तिरुमल तिरुपति देवस्थान
सप्तगिरि
सचित्र मासिक पत्रिका
जुलाई-2020 रु.5/-
तिरुमल में
संपन्न श्री बालाजी का
आणिवर आस्थान
१६-०७-२०२०

श्री चक्रत्ताल्वार जयंती
२१-०७-२०२०

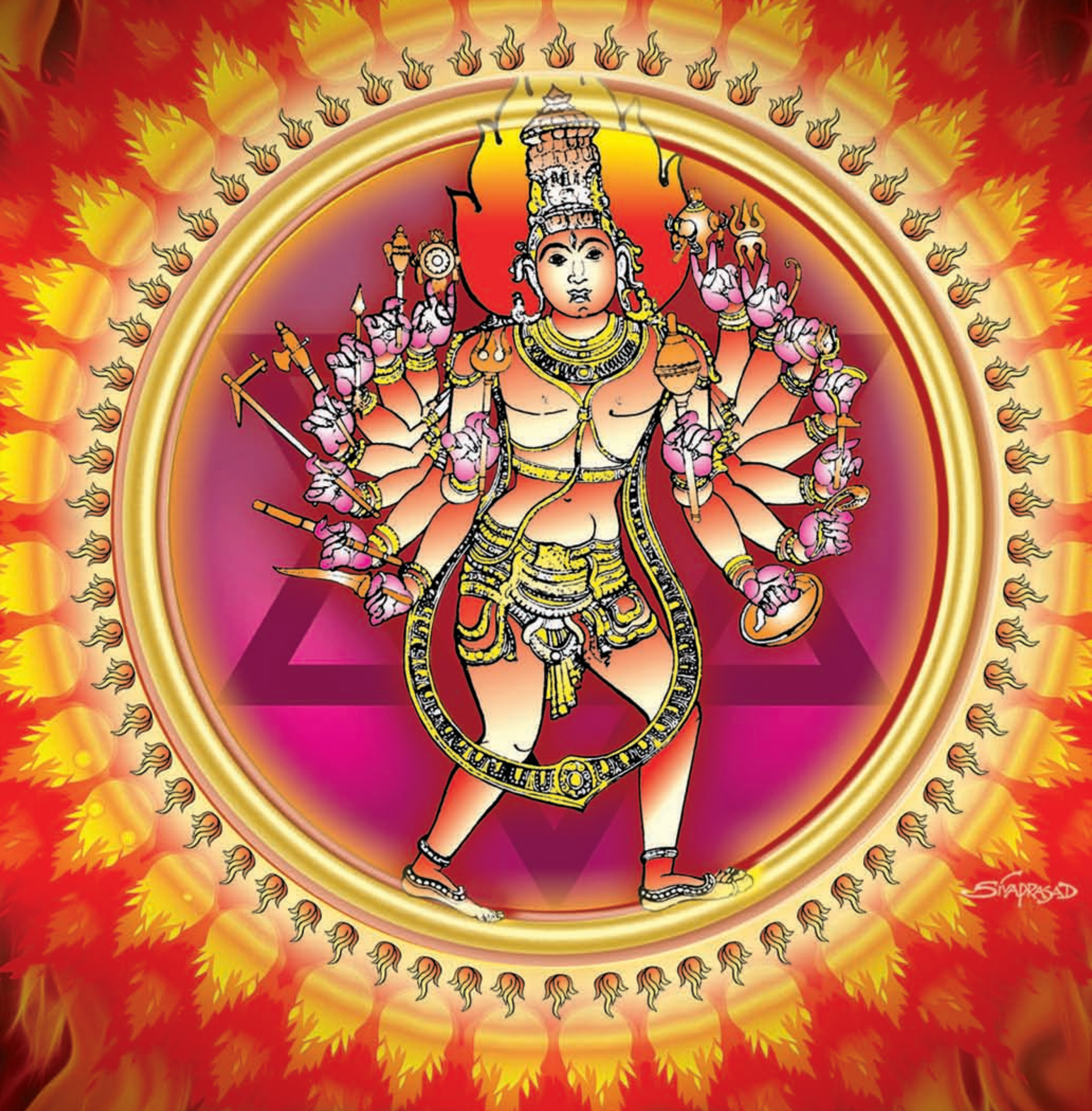

प्रतिभटश्रेणिभीषण निरिवलदुष्कर्मकर्शन
वरगुणस्तोमभूषण निगम सद्धर्म दर्शन
जनिभयस्थानतारण जय जय श्रीसुदर्शन
जगदवस्थानकारण। जय जय श्रीसुदर्शन।।

(श्रीवेदांतदेशिक विरचित श्रीसुदर्शनाष्टकम्-१)

तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्॥

(- श्रीमद्भगवद्गीता १-१२)

कौरवों में वृद्ध बडे प्रतापी पितामह भीष्म ने उस दुर्योधन के हृदय में हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्च स्वर से सिंह की दहाड के समान गरजकर शङ्ख बजाया।

एतत्पुण्यं पापहरं धन्यं दुःख प्रणाशनम्।
पठतां श्रुण्वतां वापि विष्णोर्माहात्म्य मुत्तमम्॥

(- गीता मकरंद, गीता का प्रभाव)

विष्णु का यह उत्तम माहात्म्य (गीताशास्त्र) पाठकों और श्रोताओं को पुण्य लाभ कराएगा। यह पापनाशक दुःखविनाशक एवं धन्यकारक है।

स्वामी के आगमन की अनुभूति
अपने ही घर में पाइए

सप्तगिरि मासिक
पत्रिका के लिए चंदा भरकर

श्रीहरि का अक्षरप्रसाद
हर महीने स्वीकार कीजिए

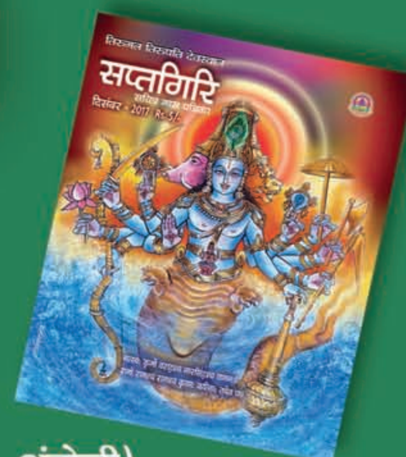

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

सप्तगिरि

सचित्र मासिक पत्रिका

(हिंदी, तेलुगु, कन्नड, तमिल, संस्कृत, अंग्रेजी)

चंदा विवरण

वार्षिक चंदा - रु.६०/-
आजीवन चंदा - रु.५००/-
विदेशों में भेजने के लिए
वार्षिक चंदा - रु.८५०/-

संस्कृत सप्तगिरि की मासिक पत्रिका
के लिए आजीवन चंदा भरने की सुविधा नहीं है।

विवरण के लिए
प्रधान संपादक

सप्तगिरि कार्यालय,
ति.ति.दे.प्रेस काम्पाउण्ड,
के.टी.रोड, तिरुपति - ५१७ ५०१.
दूरभाष : ०८७७-२२६४३६३,
२२६४५४३.

सप्तगिरि

तिरुमल तिरुपति देवस्थान की सचित्र मासिक पत्रिका

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन।
वेङ्कटेश समो देवो न भूतो न भविष्यति॥

वर्ष-५१ जुलाई-२०२० अंक-०२

विषयसूची

चातुर्मास व्रत	श्रीमती प्रीति ज्योतीन्द्र अजवालिया	07
श्री नाथमुनि स्वामीजी	श्रीमती अनिता रमाकांत. दरक	09
तिरुक्कण्णमन्नै आण्डान्	श्रीमती ममता. भट्टड	12
आण्डाल (गोदादेवीजी)	श्री प्रणव पी.अगर्वाल	16
गरुडपंचमी	डॉ.बी.ज्योत्स्नादेवी	22
वरलक्ष्मीव्रत	डॉ.बी.के.माधवी	24
शरणागति मीमांसा	श्री कमलकिशोर हि. तापडिया	31
भागवत कथा सागर भक्त प्रह्लाद के दिव्य गुण	श्री अमोघ गौराँग दास	33
अन्नमय्या के जीवन का इतिहास	श्रीमती पी.सुजाता	36
संपन्नता के लिए शारीरिक तप	श्री अमोघ गौराँग दास	39
श्री प्रपन्नामृतम्	श्री रघुनाथदास रान्दड	41
श्री चामुंडेश्वरीदेवी	डॉ.एस.पी.वरलक्ष्मी	44
श्री रामानुज नूट्रन्दादि	श्री श्रीराम मालपाणी	46
हरिदास वाङ्मय में श्रीवेंकटाचलाधीश	डॉ.एम.आर.राजेश्वरी	47
तुलसी का माहात्म्य (धार्मिक-आध्यात्मिक-वैज्ञानिक महत्व)	श्री ज्योतीन्द्र के. अजवालिया	49
आइये, संस्कृत सीखेंगे...!!	डॉ.सी.आदिलक्ष्मी	52
राशिफल	डॉ.केशव मिश्र	53

website: www.tirumala.org or www.tirupati.org वेबसैट के द्वारा सप्तगिरि पढ़ने की सुविधा पाठकों को दी जाती है। सूचना, सुझाव, शिकायतों के लिए - sapthagiri_helpdesk@tirumala.org

गौरव संपादक
श्री अनिलकुमार सिंघाल, आई.ए.एस.,
कार्यनिर्वहणाधिकारी, ति.ति.दे.

प्रधान संपादक
आचार्य के.राजगोपालन्

संपादक
डॉ.वी.जी.चोक्कलिंगम

उपसंपादक
श्रीमती एन.मनोरमा

मुद्रक
श्री पी.रामराजु
विशेष अधिकारी,
(प्रचुरण व मुद्रणालय),
ति.ति.दे. मुद्रणालय, तिरुपति।

स्थिरचित्र
श्री पी.एन.शेखर, छायाचित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।
श्री बी.वेंकटरमण, सहायक चित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।

जीवन चंदा .. रु.500-00
वार्षिक चंदा .. रु.60-00
एक प्रति .. रु.05-00
विदेशी वार्षिक चंदा .. रु.850-00

मुखचित्र - तिरुमल श्री बालाजी का आणिवर आस्थान
चौथा कवर पृष्ठ - तिरुमल श्री बालाजी का पवित्रोत्सव

अन्य विवरण के लिए:
CHIEF EDITOR, SAPTHAGIRI, TIRUPATI - 517 507.
Ph.0877-2264543, 2264359, Editor - 2264360.

सूचना

मुद्रित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखक के हैं। उनके लिए हम जिम्मेदार नहीं हैं।

- प्रधान संपादक

संपादकीय

सावन का महीना

सावन के महीने का भारतीय ऋतु-इतिहास में काफी महत्व है। सावन के माह से ऋतु-परिवर्तन आरंभ हो जाता है। चैत्र-शुद्ध-पाढ्यमी से ऋतु-बसंत के आगमन से प्रकृति में जो चुस्त-पुस्त सजगता का बिछाव-चलता है, सो सावन के मास से धीमा पड़ जाता है, जिससे धरातल पर एक मंद जागरूकता का सुडौल प्रदर्शन होने लगता है!

श्रावण-शुद्ध पाढ्यमी तिथि से ऋतु-बरखा का श्रीगणेश होता है। आसमान में घटाओं का निर्मम संचार का आरंभ हो जाता है। मंद-हवा का मादक अभिसरण प्राणियों में एक उत्तेजना भर कर सर्वत्र साम-रूप अंगड़ाई लेने लगता है। समस्त प्रकृति-शिखरों पर बरखा का झंडा फड़-फड़ाने लग जाता है! इससे काम का दैहिक तथा मानसिक प्रकोप बढ़ कर जीव, जंतु, वृक्ष आदियों में सृजन-कार्य का प्रारंभ होता है।

सावन के महीने में वातावरण में अर्द्ध-अर्द्ध प्रभावों वाला तत्त्व राज करने लगता है। धरती सूरज से दूर हटने लगती है, जिस कारण भूतल पर धूप का विघटन हो कर, अर्द्ध-सम गरमी का प्रभाव होने लगता है। वर्षा की बूँदें खिली पुहुप-बालाओं की गोद में झन-झनाहट के साथ गिर पड़ कर, निश्शब्द पुनरुत्पत्ति का आह्वान गीतिकाओं का आलाप करने लगती हैं।

सावन गरजै, भादों, बरसै, पवन चलै पुरवाई
कवन बिरछि-तर भींजत ह्वैं ह्वैं - राम-लखन दोऊँ भाई।। - तुलसीदास-कृत कवितावली

''सावन की घटायें गरजने लगी हैं। भाद्रपद के बादल बरसने लगे। हाय! राम और लक्ष्मण मेरे लाड़ले दोनों भाई इस वर्षा में किस वृक्ष के नीचे भीगते खड़े हों, नजाने!!''

अषाढ़-शुद्ध एकादशी की तिथि पर जगन्नाथ श्रीमन्महाविष्णु तल्पगत (अर्थात् शयनरत) हो गये, यानी-सो गये! सो जाने पर भी महाविष्णु आधा-ही-आधा जागरूक ही होंगे, निखिल जगत के रक्षणार्थ। -*निद्रामुद्रायां निखिल जगती-रक्षणार्थम् नित्यं जागरूकाम्।।* स्वामीजी निद्रामुद्रा में पड़ गये। अब निखिल जगती रक्षणार्थी एक अकेली माँ है- श्री महालक्ष्मीदेवी, जो निद्राशायी अपने पतिदेव की सुश्रूषा में जगरूक है। भक्तलोग उसीका पूजन करने लग गये।

श्रावणमाह की शुद्ध-द्वादशी-ज्येष्ठा नक्षत्र-युक्त शुभ तिथि पर ही कृतयुगारंभ में देव-दानवों ने मंथर-परबत से क्षीर-सागर का मथन किया था, जिसमें से सकल संपदाओं की अधिनेत्री श्रीमन्महालक्ष्मी और उसके संग-संग चंद्रभगवान, अपुरूप ओषधियों का भांड लिए धन्वंतरी, सातों अप्सरोभामिनियाँ, ऐरावत नामक हाथी, उच्चैश्रव नाम का सफेद घोड़ा, अमृत-कलश और हालाहल आदि महत्व तत्वों का भी आविर्भाव हो चुका था!!

श्रावण-शुद्ध द्वादशी-ज्येष्ठा नक्षत्र-युक्त शुक्रवार को ''वरलक्ष्मीव्रत'' समस्त हिन्दुस्तान के सनातन हिन्दू-परिवारों की महिलाएँ अत्यंत भक्ति-प्रपत्तियों के साथ मनाती हैं। उनका विश्वास है कि श्रावण-लक्ष्मी उनके परिवारों में शांति-चैन के साथ-साथ अखंड संपदाओं की विभूति ले आती है। भारतीय स्त्रियाँ रंग-बिरंगी रेशमी साड़ियाँ व दुपट्टों वाले वस्त्र पहन कर, दिनभर व्रत रखने के उपरांत, सायंसंध्या के अवसर पर अपनी सखी-सहेलियों, रिश्तेद्वारों तथा अड़ोस-पड़ोस के घरों में आते-जाते, वायनों (नये सूप में रखे तांबूल-समेत फल, प्रसाद, कंगन, चोली के कपड़े का समाहार) की स्वीकृति करती हुई अथवा देती हुई प्रकृति-सुंदरी की रौनक बढ़ाती फिरती हुई कोलाहल मचाती हैं।

लक्ष्मीं क्षीरसमुद्रराज तनयां श्रीरंगधामेश्वरीम्।
दासीभूत समस्त देववनितां लोकैक दीपांकुराम्।।

लोकास्समस्तास्सुखिनो भवंतु। समस्त सन्मंगलानिसंतु।।

चातुर्मास व्रत

- श्रीमती प्रीति ज्योतीन्द्र अजवालिया
मोबाइल - ९८२५११३६३६

श्रीवैष्णव समाज में एकादशी और चातुर्मास व्रत का महत्व अधिक है। आज हम यहाँ आषाढ शुक्ल एकादशी याने के ''शयनैकादशी'' और चातुर्मास के बारे में अनुसंधान करेंगे। ''शयनैकादशी'' या ''पद्मैकादशी'' नाम से भी प्रचलित है। सूर्य जब मिथुन राशि में प्रवेश करता है तब यह माह की एकादशी को शयनैकादशी कहते है। इस पवित्र दिन से चातुर्मास का प्रारंभ होता है। इस दिन से सृष्टि पालनहार श्रीहरि विष्णु भगवान क्षीरसागर (पाताल लोक) में जाकर आराम शयन करते है। इसलिए ये एकादशी को हम शयनैकादशी कहते है।

श्रीहरि विष्णु क्षीरसागर में शयन क्यों करते है?

पुराण में बताया है की श्रीहरि विष्णु भगवान क्षीरसागर में निवास करते है। हमारा प्रश्न यह है की क्षीरसागर में क्यों निवास करते है? इस विषय में सुंदर कथा है की श्रीहरि विष्णु भगवान वामन स्वरूप लेकर असुरराज बलि के यहाँ यज्ञ में पधारे, और भिक्षा में तीन कदमों की जमीन माँगा। जिसमें प्रथम कदम में पृथ्वी आकाश सब दिशाये मांगली, दूसरे कदम में सब लोक को माप लिया, तीसरे कदम के लिये कुछ बचा ही नही, तब बलिराजा ने कहा की प्रभु तीसरा कदम मेरे शिर पर रख के मुझे धन्य बना दो और अपनी शरण में लेलो। श्रीहरि ने तीसरा कदम बलिराजा के सिर पर रख दिया और पाताल लोक का अधिपति बना दिया। तब श्रीहरि ने प्रसन्न होकर वर मांगने को कहा, तब बलिराजा ने सदा के लिये अपने साथ पाताल में रहने के लिये कहा। अब तो श्रीहरि बलि के बंधन में आ गये, इस घटना से श्री लक्ष्मीजी बहुत चिंतित हुआ, इस वक्त श्रीहरि को बलि के बंधन से मुक्त करवाने के लिये उन्होंने बलिराजा को अपना भाई बनाया और रक्षाबंधन पर्व पर बलिराजा की कलाइ पर राखी बांधी। बलिराजा ने भेंट और पुरस्कार मांगने को कहा तब श्री लक्ष्मीजी ने अपने भाई से अपने पति श्रीहरि की पाताल लोक से मुक्ति मांगी। बलिराजा ने श्रीहरि को मुक्त किया तब श्रीहरि ने वचन दिया की मैं आषाढ शुक्ल एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशी तक क्षीरसागर में निवास करुँगा। आषाढ शुक्ल एकादशी शयनैकादशी के नाम से प्रचलित होगी और कार्तिक शुक्ल एकादशी प्रबोधनैकादशी के नाम से प्रचलित रहेगी इसीलिये प्रभु श्रीहरि विष्णु भगवान इस चातुर्मास के दौरान क्षीरसागर में निवास करके योगनिद्रा में रहते हैं।

चातुर्मास का महत्व

चातुर्मास दौरान श्रीहरि क्षीरसागर में निवास करते है, चार माह तक पाताल लोक में रह कर योगनिद्रा में रहते है और कार्तिक शुक्ल एकादशी को क्षीरसागर से बाहर आकर पुनः वैकुंठ में विराजते हैं। इस चातुर्मास के दौरान यज्ञोपवित संस्कार, विवाह संस्कार, जात संस्कार, दीक्षा ग्रहण संस्कार, यज्ञ, गृहप्रवेश आदि शुभ कार्य वर्ज्य माने जाते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस चातुर्मास दौरान वर्षाऋतु रहती है। श्रीहरि क्षीरसागर में निवास करते है इसीलिए इस दौरान सूर्य-चंद्र, सब वर्षाऋतु की वजह से निस्तेज बनता है, इसीलिए कोई शुभ कार्य नही होता है।

वर्षाऋतु के कारण चारों ओर कीटक, बैक्टीरिया का उपद्रव बढता है। बारीश की वजह से पाचन शक्ति मंद हो जाती है। शरीर में पित्त प्रकोप बढता है। इसीलिये ज्यादा खाना हमारे शरीर केलिये नुकशान कारक होता है। जब शरीर स्वस्थ नही रहता तब मन भी अस्वस्थ रहता है इसलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने और शास्त्रों ने बताया है की चातुर्मास दौरान शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिये हमें उपवास, फलाहार और एक टंक भोजन करना फायदामंद रहेगा।

चातुर्मास में त्यजने वाली बाबत

चातुर्मास के दौरान हमारे शास्त्र ने कई बाते बताई है। यह माह दौरान कम से कम प्रवास करे बिना, एक ही स्थान में स्थिर रह के अधिकतम प्रभु नाम स्मरण करने का महत्व है। खास करके भजन में लीन बनके भोजन से दूर रहने की आज्ञा हमारा शास्त्र देता है। विशेष रूप से श्रावणमास में शाकभाजी, भाद्रपद में दही, आसो मास में दूध और कार्तिक मास में दवीदल, अनाज से दूर रह कर उपवास करने का महत्व है।

श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को दिया चातुर्मास का मार्गदर्शन

१) चातुर्मास दौरान दैव मंदिर में जाकर मंदिर और आंगन में सफाइ करके आंगन में रंगोली बनाते है, ये व्यक्ति सात जन्म तक ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है।

२) श्रीहरि को पंचामृत से स्नान कराने से भक्त को सारुप्य मुक्ति प्राप्त होती है।

३) नित्य श्रीविष्णुसहस्त्रनाम जप कर तुलसीपत्र से अर्चना करते है इससे वैकुंठ में स्थान मिलता है।

४) पीपल पेड की परिक्रमा करने से सत्यलोक की प्राप्ति होती है।

५) श्रीहरि चरणामृत का सेवन करने से शरणागति मिलती है।

६) श्रीहरि के पावन मंदिर में त्रिकाल गायत्री मंत्र का अनुसंधान करने से जीवात्मा पाप मुक्त हो जाता है।

७) धर्म ग्रंथों का अध्ययन, पूजा-पाठ करने से प्रतिष्ठा बढती है।

८) नित्य सूर्य नमस्कार, गणेश वंदना करने से आरोग्य एवं ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

९) अष्टाक्षर मंत्र (ॐ नमो नारायण) के अनुष्ठान से अक्षय अनंत फल प्राप्त होता है।

चातुर्मास का नित्यक्रम - चातुर्मास के दौरान श्रीहरि विष्णु भगवान की नित्य पंचोपचार से पूजा-आराधना और पंचामृत से अभिषेक करके नित्य श्रीविष्णुसहस्त्रनाम का पाठ करने से श्रीहरि विष्णु भगवान प्रसन्न होते है। इस तरह भगवान श्रीहरि हमारे कल्याण हेतु चातुर्मास व्रत माहात्म्य बताके हमारे लिए शरणागति का, परमपद का मार्ग निश्चित कर दिया है।

जय श्रीमन्नारायण!

श्री नाथमुनि स्वामीजी

- श्रीमती अनिता रमाकांत. दरक

मोबाइल - ९४४९१८३६११

तनियन : *नमः चिन्त्यादभुताक्लिष्ट ज्ञान वैराग्य राशये।*
नाथायमुनयेगाध भगवद्भक्ति सिन्धवे।।

तिरुनक्षत्र - ज्येष्ठ मास, अनुराधा नक्षत्र

अवतार स्थल - श्री वीरनारायणपुरम

आचार्य - श्री शठकोप स्वामीजी

शिष्य - श्री नाथमुनि स्वामीजी के ग्यारह शिष्य थे। इन सबों में श्री पुंडरीकाक्ष स्वामीजी, लक्ष्मीनाथाचार्य स्वामीजी, श्रीकृष्ण स्वामीजी, कुरुकानाथ स्वामीजी विख्यात है।

श्री नाथमुनि स्वामीजी वीरनारायणपुरम नामक नगर में ईश्वर भट्ट नामक किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ के यहाँ उनके पुत्र रूप में कलियुग के तीन हजार चौबीस वर्षों के बीत जाने पर शोभकृत संवत्सर के ज्येष्ठ पूर्णिमा तिथि के दिन अनुराधा नक्षत्र में श्रीविश्वक्सेन के अंश से श्री नाथमुनि का अवतार हुआ। श्री ईश्वर भट्टजी की भगवद्भक्ति उत्कृष्ट थी। श्री नाथमुनि स्वामीजी श्री राजगोपाल भगवान के सन्निकट में ही जाते और सेवा करते थे।

एक दिन आपकी इच्छा हुई की आप भगवान के अवतार स्थल मथुरा, अयोध्या आदि स्थलों में जाकर उस स्थानों में विध्यमान श्री विग्रह के दर्शन करें। आपकी यह प्रार्थना सुनकर भगवान ने आपको जाने का आदेश दिया। भगवान की आज्ञा पाकर स्वामीजी वीरनारायणपुरम से उत्तर भारत के दिव्यदेशों, अभिमान देशों की यात्रा के लिए अपने पिता, पुत्र और अन्य कुटुम्ब सदस्यों के साथ मथुरा, वृंदावन, गोवर्धन धाम, द्वारका, बद्रीनाथ, नैमिषारण्य इत्यादि दिव्य धामों के लिये प्रस्थान लिए। यमुना नदी के तट पर स्थित गोवर्धनपुर गाँव, श्री नाथमुनि स्वामीजी को बहुत ही प्रभावित किया। यहाँ निवास करते हुए सकल कला कुशल, नटवर नागर, वेषधारी श्रीकृष्ण भगवान की नित्य सेवा करते थे। इसी बीच भगवान राजगोपाल ने एक दिन स्वप्न में दर्शन दिया कि तुम अब मेरी सन्निधि में चले आओ। फिर भगवान श्रीकृष्ण कि आज्ञा पाकर आप श्री वीरनारायणपुरम लौट जाते है।

श्री शठकोप सूरि विरचित श्री शारंगपानी विषयक दस गाथाओं को सुनकर प्रसन्नता का अनुभव करते हुए बोले कि इन गाथाओं का सतत पाठ करना चाहिए। तदनंतर सहस्त्रगीति की सभी गाथाओं को प्राप्त करने की मनोकामना भगवान से व्यक्त की। भगवान उन्हें ताम्रपर्णि नदी के तीर कुरुकानगरी में श्री शठकोप सूरि के सन्निधि से उसे प्राप्त करने की आज्ञा देते है। कुरुकानगरी में आप की मुलाकात श्री परांकुश स्वामीजी

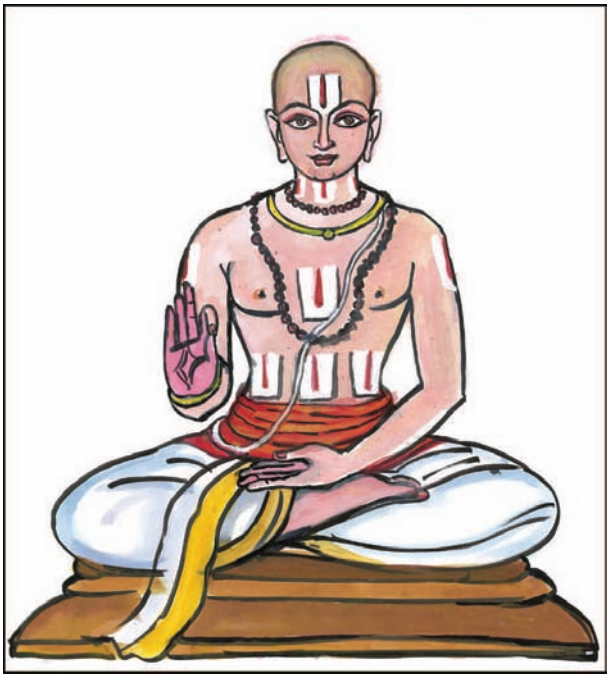

से होती है। श्री परांकुशदास स्वामीजी कहते है की अब इस भूमंडल पर उस सहस्त्रगीति की सिर्फ १० गाथाएँ ही बची है बाकी सब लुप्त हो गई है। उन पाशुरों को प्राप्त करने का एक ही उपाय है। यदि आप १० गाथाओं का बारह हजार बार श्री वकुलाभरण स्वामीजी के समक्ष बैठ कर पाठ करें तो हो सकता है सूरि प्रसन्न होकर उस समस्त ग्रंथ को प्रदान कर दे। श्री परांकुश स्वामीजी के बताये हुए क्रम के अनुसार श्री नाथमुनि स्वामीजी पारायण प्रारम्भ करते है। श्री नाथमुनि के इस पारायण से प्रसन्न होकर लक्ष्मीजी के पुरुषकार से श्री शठकोप स्वामीजी प्रकट होकर अपना शिष्यत्व प्रदान कर उन्हें अष्टांग योग का परिपूर्ण ज्ञान और आळवार संतों द्वारा रचित ४००० दिव्यप्रबंध पाशुर अर्थ सहित प्रदान करते हैं।

श्री भविष्यदाचार्य स्वामीजी का श्री विग्रह सबसे पहले श्री शठकोप स्वामीजी ने श्री नाथमुनि स्वामीजी को ही प्रदान किया था। जिसके दर्शन हम आज भी श्री आल्वार तिरुनगरी में देख सकते है।

श्री नाथमुनि स्वामीजी दिव्यसंगीत के भी महा विद्वान थे। एक समय, उस गाँव के राजा एक साधारण और विशेष गायक के बीच कोई अंतर नही कर पा रहे थे। श्री नाथमुनि स्वामीजी ने अति सरलता से अंतर पहचान कर इस समस्या को सुलझा दिया। राजा ने यह देख उसने नाथमुनि स्वामीजी की संगीत की प्रवीणता की परीक्षा लेनी चाही, तब नाथमुनि स्वामीजी जवाब देते है की, वह ४००० झांझों की सम्मिलित ध्वनि सुनकर, एक एक झांझ की ध्वनि और उसके वजन का अनुमान कर सकते हैं। यह सुन राजा को नाथमुनि स्वामीजी की संगीत में प्रवीणता समझ आती हैं, राजा नाथमुनि स्वामीजी को ढेर सारा धन देकर गौरवान्वित करते हैं। पर भौतिक सुखों को तुच्छ समझने वाले और सर्वथा अपरिग्रह का व्रत पालन करने वाले नाथमुनि स्वामीजी, इस धन संपत्ति के लिए कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते है और राजा को आशीर्वाद एवं धन्यवाद प्रदान कर भगवान राजगोपाल की सन्निधि में पधारते है।

अपने दिव्य ज्ञान, अपने अष्टांगयोग की साधना से भविष्य को देखते हुये, अपने पौत्र का आगमन देखते है, अपने पुत्र ईश्वर मुनि से कहते है कि उसका नाम यामुनाचार्य रखना (याने कृष्ण प्रेम के कारण यमुना नदी से संबन्धित)। और अपने शिष्यों से वचन मांगते है कि उसको सभी शास्त्रों का ज्ञान प्रदान कर शास्त्र ज्ञान में निपुण बनाना।

अपना अंतिम समय निकट जान कर नाथमुनि स्वामीजी, आस-पास की परिस्थितिथों से विस्मरित हो भगवान राजगोपल के ध्यान में निमग्न रहते थे। एक दिन उनसे मिलने राजा और रानी आते है। ध्यानमग्न स्वामीजी को देख, राजा और रानी लौट जाते है। प्रभु प्रेम, लगन और भक्ति में मग्न, नाथमुनि स्वामीजी को ऐसा आभास होता है की भगवान श्रीकृष्ण गोपिका के साथ आए और उनको ध्यानमग्न अवस्था में देखकर वापस लौट गये है, अपने

इस आभास से दु:खी हो श्री नाथमुनि, राजा और रानी की ओर दौड़ते है।

अगली बार शिकार से लौटते हुए राजा, रानी, एक शिकारी, एक वानर के साथ उनसे मिलने के लिए आते हैं। इस बार भी नाथमुनि स्वामीजी को ध्यान मग्न देख, राजा फिर से लौट जाते हैं। नाथमुनिजी को इस बार यह लगता हैं की श्रीरामचन्द्र, माता सीता, लक्ष्मण जी और हनुमान जी उन्हें दर्शन देने पधारे हैं, पर उन्हें ध्यान मग्न देख लौट गये और इसी आभास में, नाथमुनि उनके दर्शन पाने उनके पीछे दौड़ते हैं। जब वह छवि उनकी आँखों से ओझल हो जाती हैं, भगवान से वियोग सहन न कर पाने के कारण नाथमुनि मूर्छित हो प्राणों को छोड़ देते हैं और परमपद प्राप्त कर लेते है। यह समाचार सुनकर तुरन्त ईश्वर मुनि, शिष्य वृंद के साथ वहाँ पहुँचते हैं और उनके अंतिम चरम कैंकर्य करते है।

नाथमुनि स्वामीजी के प्रयास से प्राप्त इस दिव्यप्रबंधों के कारण ही आज श्रीवैष्णव सांप्रदाय का ऐश्वर्य हमें प्राप्त हुआ हैं। इनके बिना यह प्राप्त होना दुर्लभ था। श्री यामुनाचार्य स्वामीजी, (नाथमुनि स्वामीजी के पौत्र) अपने स्तोत्र रत्न में नाथमुनि स्वामीजी की प्रशंसा प्रारंभ के तीन श्लोकों में करते है।

पहले श्लोक में बताते हैं कि ''मैं उन नाथमुनि को प्रणाम करता हूँ जो अतुलनीय हैं, विलक्षण हैं और एम्पेरुमानार के अनुग्रह से अपरिमित ज्ञान भक्ति और वैराग्य के पात्र हैं।''

दूसरे श्लोक में कहते हैं कि ''मैं उस नाथमुनिजी के चरण कमलों का, इस भौतिक जगत और अलौकिक जगत में आश्रय लेता हूँ जिन्हें मधु राक्षस को वध करने वाले के (भगवान श्रीकृष्ण) श्रीपाद कमलों पर परिपूर्ण आस्था, भक्ति और शरणागति ज्ञान हैं।''

तीसरी श्लोक में कहते हैं कि ''मैं उन नाथमुनिजी की सेवा करता हूँ जिन्हें अच्युत के लिए असीमित प्रेम हो निजज्ञान के प्रतीक हैं, जो अमृत के सागर हैं, जो बद्ध जीवात्माओं के उज्जीवन के लिए प्रकट हुए हैं, जो भक्ति में निमग्न रहते हैं और जो योगियों के महाराजा हैं।''

उनके अंतिम और चौथे श्लोक में भगवान से विनती करते हैं कि, उनकी उपलब्धियों को न देखकर, बल्कि उनके दादा श्री नाथमुनि स्वामीजी की उपलब्धियाँ और शरणागति देखकर मुझे अपनी तिरुवेडी का दास स्वीकार कीजिये।

इन चारों श्लोकों से हमें नाथमुनि स्वामीजी के महान वैभव की जानकारी होती हैं।

तिरुक्कण्णमन्गै आण्डान्

- श्रीमती ममता. भट्टड

मोबाइल - ९०३५११२६३१

जन्मनक्षत्र - ज्येष्ठा - श्रवणा नक्षत्र

अवतार स्थल - तिरुक्कण्णमन्गै

आचार्य - नाथमुनि स्वामीजी

परमपद प्राप्त स्थान - तिरुक्कण्णमन्गै

रचना - नाच्चियार तिरुमोली की तनियन जो 'अल्लि नाल थामरै मेल्' से शुरू होती है।

तिरुक्कण्णमन्गै आण्डान्, नाथमुनिजी के प्रिय शिष्य का अवतार तिरुक्कण्णमन्गै में हुआ। हमारे पूर्वाचार्य भगवान के संरक्षण (रक्षकत्व स्वभाव अर्थात् अपने आश्रयों की रक्षा करने की शक्ति) में परम विश्वास रखने वाले आप श्री की इस महिमा का सदैव गुणगान करते है। उनकी महिमा श्रीवचन भूषण दिव्य शास्त्र में पिल्लै लोकाचार्य द्वारा बताया गया है। उपाय (भगवान को पाने का मार्ग) और उपेय (भगवान की सेवा ही लक्ष्य) के सबसे आदर्श उदाहरणों के बारे में समझाते हुए- सूत्र ८० में वह कहते है- ''उपायत्तुक्कू पिराट्टियैयुम्, ध्रौपतियैयुम्, तिरुक्कण्णमन्गै आण्डानैयूम् पोले इरुककावेनुं; उपेयत्तुक्कू इलैय पेरुमालैयूम्, पेरिया उडैयारैयुम्, पिल्लै तिरुनरैयूर अरैयरैयुम् चिंतयन्तियैयूम पोले इरुककावेनुं।''

इस सूत्र और अगले कुछ सूत्रों में उन्होंने उपाय और उपेय को उत्कृष्ट उदाहरण के साथ समझाया है। उपाय एक प्रक्रिया है और उपेय लक्ष्य है। शास्त्रों के अनुसार भगवान सबसे अच्छे उपाय है और भगवान की सेवा ही सर्वोच्च लक्ष्य है। क्योंकि भगवान हर तरह से सक्षम है, वे आसानी से किसी का भी उत्थान कर सकते है और इसलिए वे ही सर्वोत्तम उपाय है। भगवान श्रीमन्नारायण जगत के एकमात्र स्वामी है, उनका और उनकी पत्नी श्री महालक्ष्मी का कैंकर्य ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है। उपाय और उपेय को समझाने के लिए कुछ उदाहरण संक्षेप में दिए गए है।

उपाय -

सीताजी (श्री महालक्ष्मी जी) - जब रावण ने सीताजी का हरण करके उन्हें बंदी बना कर रखा, तब वह स्वयं को बचाने और रावण को दंड देने में पूरी तरह से सक्षम थी। उन्होंने अपनी क्षमता का प्रदर्शन हनुमान की रक्षा द्वारा किया था जब राक्षसों ने उनकी पूंछ में आग लगा दी थी। उन्होंने ''शीतो भवः'' (इस आग का हनुमान पर शीतल प्रभाव हो) ऐसा आशीर्वाद दिया और हनुमान की रक्षा की। परंतु उन्होंने अपनी पूरी निर्भरता श्रीराम के प्रति प्रकट की, स्वयं की रक्षा करने की शक्ति तो त्याग दिया और श्रीराम आकर उनकी रक्षा करेंगे ऐसी प्रतीक्षा करने लगी।

द्रौपदी - जब द्रौपदी को कौरवों की सभा में अपमानित किया गया था उन्होंने पूरी तरह से अपनी

लाज की चिंता छोड कर अपने हाथ ऊपर उठाए और श्रीकृष्ण को पुकारी। उन्होंने अपनी लाज बचाने के लिए वस्त्रों को नहीं पकडा अपितु पूरी श्रद्धा से अपने हाथों को उठाया और श्रीकृष्ण ने उनकी निश्चित रूप से रक्षा की।

तिरुक्कण्णमन्गै आण्डान् ने अपने सभी कार्यों को छोड दिया और तिरुक्कण्णमन्गै दिव्यदेश के भक्तवत्सल भगवान को अपना रक्षक स्वीकार करके उनके समक्ष स्वयं को पूरी तरह से समर्पित कर दिया।

श्रीवरवरमुनि स्वामीजी ने इस सूत्र के व्याख्यान में आण्डान् की निष्ठा को सुंदरता से समझाया है। एक बार आण्डान् ने देखा एक व्यक्ति एक कुत्ते पर हमला करता है। यह देखकर कुत्ते का मालिक बहुत नाराज होता है और कुत्ते पर हमला करने वाले से झगड़ा करता है। वे दोनों अपने चाकू बाहर निकालते है और एक दूसरे पर हमला करते हैं, यहाँ तक की एक दूसरे को मारने के लिए तैयार हो जाते हैं। इसे देखकर आण्डान् को एहसास होता है। आण्डान् सोचते हैं कि जब एक साधारण व्यक्ति जिसके पास एक कुत्ता है अपने कुत्ते पर हमला करने वाले पर क्रोधित होता है और उसे मारने की हद तक जा सकता है क्योंकि वह उस कुत्ते का स्वामी है, तो श्रीमन्नारायण जो जगत के स्वामी हैं, वे कैसे महसूस करते होंगे जब कोई शरणागत पीडित हो और स्वयं अपने को बचाने की कोशिश करता हो। ऐसा सोचकर आण्डान् तुरंत अपने सारे मोह का त्याग कर देते हैं और अपनी रक्षा के बाबत बिना किसी अधिक चिंता के मंदिर में जाकर खुशी से भगवान के चरणों में लेट जाते हैं। यहाँ सभी कार्यों के त्याग का अर्थ कुछ भी नहीं करने से समझा जा सकता था परंतु वरवरमुनि स्वामीजी ने इस सिद्धांत को बहुत ही सुंदरता से अपने व्याख्यान में समझाया है।

''स्वरक्षण हेतुवान स्व-व्यापरंगलै विट्टान् एन्रपडि'', उनके दिव्य वचन है- अर्थ उन्होंने ऐसे सभी कार्यों का त्याग किया जो स्वयं की रक्षा से संबंधित थे। इसका अभिप्राय है की उन्होंने भगवान की प्रति अपने अद्भुत कैंकर्य को जारी रखा और सिर्फ स्वयं की रक्षा करने के प्रयासों का त्याग किया। आय जनन्याचार्य ने भी इसी सिद्धांत पर प्रकाश डाला है। इसे आगे आने वाले भागों में समझा जा सकता है, विशेषतः उस घटना के माध्यम से जो तिरुवाय्मोलि ९.२.१ व्याख्यान में दर्शायी गयी है।

उपेय (कैंकर्य) - सूत्र ८० के शेष भाग और आगे के भागों का संक्षिप्त विवरण -

१) लक्ष्मणजी - लक्ष्मणजी श्रीरामजी के प्रति अपने कैंकर्य में बहुत दृढ और तेज थे। जहाँ जहाँ श्रीराम जाते थे लक्ष्मणजी वहाँ वहाँ उनकी सेवा किया करते थे।

२) जटायु महाराज - सीताजी को बचाने के लिए, रावण से लड़ाई करते हुए, जटायुजी को अपने प्राणों को भी परवाह नहीं थी, उनका पूरा ध्यान सिर्फ सीताजी को बचाने में था और अंत में वे रावण द्वारा मारे गए।

३) पिल्लै तिरुनरैयूर अरैयर - वह अपने परिवार के साथ तोट्टियम तिरुनारायणपुर (जो श्रीरंगम के पास स्थित है) के भगवान की सेवा करते थे। एक बार कुछ वंडलो ने मंदिर पर हमला किया और भगवान के अर्चा विग्रह को आग लगा दी। वे हमले को सहन न कर सके और भगवान की रक्षा के लिए अपने परिवार सहित भगवान के अर्चा विग्रह को गले से लगा लिया

और इस तरह उन्होंने भगवान का संरक्षण किया। ऐसे में, आग से जलने के कारण उन्होंने अपने परिवार के साथ अपना जीवन छोड़ दिया। हमारे पूर्वाचार्यों ने भगवान के प्रति उनके समर्पण के लिए उनकी बड़ी प्रशंसा की है।

४) चिंतयंती - ब्रज भूमि में एक गोपिका रहती थी। उनका श्रीकृष्ण भगवान से बहुत लगाव था। एक बार श्रीकृष्ण भगवान की दिव्य मधुर धुन सुनकर, वे आनंदित हो जाती है और उन्हें देखने के लिये घर से निकलना चाहती है। परंतु वह घर से नहीं निकल पाती और बहुत दुःखी हो जाती है। भगवान की बांसुरी की धुन सुनने के आनंद से उनके पुण्य कर्म (पुण्य, खुशी प्रदान करता है) समाप्त हो जाते हैं और घर से ना निकल पाने के महान दुःख से उनके पाप कर्म समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि उनके पुण्य और पाप सब समाप्त हो जाते हैं, वे उसी समय परमपद के लिये प्रस्थान करती है (हमारे पुण्य और पाप हमें इस संसार में बाँधते हैं, जब वो समाप्त होते हैं तब हमारा उत्थान हो जाता है)।

इस प्रकार परमपद जाने और वहाँ सदा भगवान की सेवा के अंतिम लक्ष्य को उन्होंने आसानी से प्राप्त किया।

आण्डान् ने तिरुक्कण्णमन्गै भगवान की सेवा करते हुए अपना शेष जीवन व्यतीत किया और फिर भव्यता से परमपद की ओर प्रस्थान किया और वहाँ परमपदनाथ भगवान के दिव्य कैंकर्य को जारी रखा।

व्याख्यान और पूर्वाचार्यों के ग्रंथों में कुछ स्थानों पर आण्डान् के जीवन और वैभव को प्रस्तुत किया है। अब हम उन्हें देखते हैं।

१) **नाच्चियार तिरुमोली १.१ -** पेरियवाच्चान् पिल्लै व्याख्यान - आंडाल बताती है ''तरै विलक्कि'' - फर्श की सफाई के द्वारा। पिल्लै बताते है की आण्डान् सफाई का कैंकर्य चरम लक्ष्य की तरह करते थे (कुछ पाने के साधन भाव से नहीं)।

२) **तिरुमालै ३८ -** पेरियवाच्चान् पिल्लै व्याख्यान- ''उन कदैत्तलाई इरुन्तु वालुम सोम्बर'' को समझते हुए पिल्लै कहते है ''वालुम सोम्बर'' (जीवित आलसी व्यक्ति) का आश्रय उनसे है जिन्हें भगवान पर पूरा विश्वास है ठीक वैसा जैसे कुत्ते के स्वामी द्वारा कुत्ते की रक्षा किये जाने कि क्रिया को देखकर, आण्डान् ने भक्तवत्सल भगवान के प्रति प्रदर्शित किया। ''वालुम सोम्बर'' का विपरीत ''तंजूम सोम्बर'' (असली आलसी व्यक्ति) है, जो किसी भी कैंकर्य में संलग्न नहीं होते और जीवन बर्बाद करते है।

३) **तिरुवाय्मोलि ९.२.१ -** नम्पिल्लै ईडु व्याख्यान- शठकोप स्वामीजी १०.२.७ में कहते हैं ''कदैत्तलै चीयक्कप्पेत्ताल कडुविनै कलैयलामें'', भगवान के मंदिर के फर्श की सफाई करने मात्र से पापों को हटाया जा सकता है। आण्डान् सब कुछ त्याग कर तिरुक्कण्णमन्गै भक्तवत्सल भगवान की सन्निधि में रहने के लिये प्रसिद्ध थे। वे सफाई के कैंकर्य से जुड़े थे और वह यह कैंकर्य नियमित रूप से करते थे। तिरुवाय्मोलि ९.२.१ व्याख्यान में नम्पिल्लै बहुत सुंदरता से एक महत्वपूर्ण पहलू स्थापित करते है। यहाँ इस पाशुर में शठकोप स्वामीजी भगवान से कहते है - ''हम पीढियों से बहुत से अलग-अलग कैंकर्य कर रहे है जैसे की मंदिर की सफाई करना, आदि।'' यहाँ एक प्रश्न उठता है। प्रपन्न भगवान को ही एक मात्र उपाय रूप से स्वीकार करते हैं। प्रपन्न का किसी भी तरह के स्व प्रयासों से संबंध नहीं है- फिर

आखिर कैंकर्य क्यों? यह नम्पिल्लै ने आण्डान् के निम्न वृत्तांत द्वारा बहुत सुंदरता से समझाया है। उनके एक सहपाठी (जो नास्तिक थे) आण्डान् से पूछते हैं कि वो स्वयं को फर्श की सफाई करके क्यों परेशान करते हैं जब उनकी स्वयं के प्रयासों में कोई भागीदारी नहीं है। आण्डान् उन्हें एक जगह दिखाते हैं जहाँ धुल है और दूसरी जगह जहाँ धुल नहीं है, और कहते हैं कि झाडू लगाने का परिणाम यह है की जगह साफ रहती है, इससे ज्यादा कुछ नहीं। वह पूछते हैं- क्या तुम साफ और गंदी जगह के बीच अंतर नहीं पहचान सकते? इस तरफ से हम समझ सकते हैं कि कैंकर्य करना हमारे दास होने का प्राकृतिक गुण है और कैंकर्य करना उपाय नहीं है। वचन भूषण के सूत्र ८८ में पिल्लै लोकाचार्य बड़ी सुंदरता से समझाते हैं- एक भौतिक इच्छाओं से संचालित व्यक्ति अपनी (या अपने प्रियजनों की) भौतिक इच्छाओं को पूरा करने के लिये बहुत कुछ करता है, तो एक प्रपन्न (जिसने अपने को भगवान को समर्पित कर दिया हो) की कितनी चाहत होना चाहिये भगवान की सेवा करने की जो सर्वोच्च आनंददायक है और जीवात्मा के वास्तविक स्वरूप से सेवित होने के लिये उपयुक्त है?

४) चरमोपाय निर्णय - नाथमुनि स्वामीजी ने स्वयं शठकोप स्वामीजी से आल्वार तिरुनगरी में ४००० दिव्यप्रबंध सीखे और वीरनारायणपुर लौट आए। उन्होंने वहाँ मन्नार भगवान के समक्ष वह दिव्यप्रबंध सुनाया और भगवान से सभी सम्मान प्राप्त किये। फिर वे अपने निवास पर पहुँचे और अपने भतीजे कीळै अगतु आल्वान और मेलै अगतु आल्वान को आमंत्रित किया। वह आल्वार से मिली विशेष दया और आल्वार द्वारा स्वप्न में दिखाये गये दिव्य स्वरूप के बारे में उन्हें बताते हैं (नाथमुनि के स्वप्न में शठकोप स्वामीजी श्रीरामानुज का दिव्य स्वरूप दिखाते है, जो भविष्य में जीवों के उत्थान के लिये प्रकट होने वाले हैं)। वे दोनों इसे सुनकर चकित रह जाते हैं और संतुष्ट होते हैं की इन महानुभाव से वे किसी तरह संबंधित हैं। उसके बाद नाथमुनिजी अपने प्रिय शिष्य आण्डान् को तिरुवाय्मोलि के माध्यम से द्वय महामंत्र का अर्थ सीखा रहे थे (जो एक उचित शिष्य होने के योग्य हैं)। ''पोलीगा पोलीगा'' पाशुर में नाथमुनिजी शठकोप स्वामीजी के दिव्य वचनों और स्वप्न में देखी हुई घटनायें बताते हैं। ऐसा सुनकर आण्डान् कहते हैं- मैं धन्य हूँ जो मेरा संबंध आप जैसे महानुभाव से है जिन्होंने स्वप्न में भविष्यदाचार्य का दिव्य स्वरूप देखा। इस वृत्तांत का उल्लेख नारायण पिल्लै, पेरियवाच्चान् पिल्लै के दत्तक पुत्र ने अपने ग्रंथ चरमोपाय निर्णय में किया है।

वार्तामाला १०९ - पिंभळगिय पेरुमाल जीयर उसी सिद्धांत को समझाते हैं जो हमने श्रीवचन भूषण सूत्र में पहले देखा। यहाँ वे बताते हैं कि कैसे भगवान को पाये और कैसे पूरी तरह से उन पर निर्भर रहे इसके सर्वोच उदाहरण है सीताजी, द्रौपदी और आण्डान्।

वार्तामाला २३४ - यहाँ सामान्य शास्त्र (वर्णाश्रम धर्म) से अधिक विशेष शास्त्र (भागवत धर्म) के महत्व पर ध्यान केंद्रित करने पर बल दिया गया है और यह बताया गया है कि हमें यह नहीं सोचना चाहिये की ऐसी निष्ठा मात्र अत्यधिक ऊँचे अधिकारियों जैसे भरतजी, आण्डान् के लिये सम्भव है। अपितु हर किसी को उसके लिये प्रयास करना चाहिये और भगवान की कृपा से हम भी इस विश्वास में दृढ हो जायेंगे।

आण्डाल (गोदादेवीजी)

- श्री प्रणव पी.अगर्वाल

मोबाइल - ९४२०३८२५२३

तिरुनक्षत्र - आषाड मास, पूर्व फाल्गुनी नक्षत्र

अवतार स्थल - श्रीविल्लिपुत्तूर

आचार्य - पेरियाल्वार

ग्रंथ रचना - नाच्चियार तिरुमोलि, तिरुप्पावै

तिरुप्पावै ६००० पड़ी व्याख्यान में, श्री पेरियवाच्चान पिल्लै सर्वप्रथम अन्य आल्वारों की तुलना में आण्डाल के वैभव और महत्व का प्रतिपादन करते है। वे विभिन्न प्रकारों के जीवों का उदाहरण देते हुए अत्यंत सुन्दरता से इनका विभाग करते है और इनके बीच का फर्क समझाते है जो आगे प्रस्तुत है :

सर्वप्रथम : संसारियों (देहात्म अभिमानी-संसारिक जन) और ऐसे ऋषि जिन्हें स्वरूप ज्ञान का साक्षात्कार हुआ है इनमें छोटे पत्थर और बड़े पर्वत का फर्क है।

दूसरा : पूर्वोक्त ऋषियों (जिन्हें अपने बल बूते पर आत्म साक्षात्कार हुआ है, जो कभी कभी अपने स्थर से नीचे गिर जाते थे) और आल्वारों (जिन्हें केवल भगवान के निर्हेतुक कृपा से आत्म साक्षात्कार हुआ है और जो अत्यंत शुद्ध है) में भी छोटे पत्थर और बड़े पर्वत का फर्क है।

तीसरा : पूर्वोक्त आल्वारों (जो कभी कभी स्वानुभव और मंगलाशासन पर केन्द्रित थे) और पेरियाल्वार (जो सदैव मंगलाशासन पर केन्द्रिय थे) में भी छोटे पत्थर और बड़े पर्वत का फर्क है।

चौथा : पेरियाल्वार और आण्डाल में भी छोटे पत्थर और बड़े पर्वत का फर्क है। इसके अनेकानेक कारण है जो निम्नलिखित है -

१) अन्य आल्वारों को सर्वप्रथम भगवान के निर्हेतुक कृपा के पात्र बनाकर सुसुप्त बद्ध जीवों को जगाया (दिव्य ज्ञान - भगवत विषय)। परन्तु श्री आण्डाल देवी ने (जो साक्षात् भूदेवी की अवतार है) भगवान को अपनी नींद से जगाया और उनके कर्तव्य का स्मरण कराया (सारे जीवों का संरक्षण)। नम्पिल्लै ने तिरुविरुत्तम और तिरुवाय्मोलि के व्याख्या में यह प्रतिपादित किया है की आल्वार संसारी ही थे जिन पर भगवान का निर्हेतुक कृपा कटाक्ष हुआ है और अतः भगवान से दिव्य ज्ञान प्राप्त किये है। इसके विपरीत में आण्डाल देवी तो साक्षात् भूदेवी का अवतार स्वरूप है, जो नित्यसूरी है, और भगवान की दिव्य महिषी है। इनके मार्गदर्शन

में चलते श्री पेरिय वाच्चान पिल्लै ने भी यही निरूपण दिया है।

२) आंडाल देवी एक स्त्री होने के नाते उनका भगवान के साथ पति-पत्नी का सम्बन्ध स्वाभाविक था। अतः इसी कैंकर्य का आश्रय लेकर उन्होंने कैंकर्य किया। इसके विपरीत देखा जाए तो अन्य आल्वार को पुरुष देह प्राप्त हुआ था। इसी कारण कहा जाता है की आण्डाल देवी और इन आल्वारों के भगवद प्रेम में बहुत अन्तर है। आण्डाल देवी का भगवद प्रेम आल्वारों के भगवद प्रेम से उत्कृष्ट और कई गुना श्रेष्ठ है।

पिल्लै लोकाचार्य स्वरचित श्रेष्ठ और उत्तम ग्रंथ श्री वचन भूषण में आण्डाल देवी के वैभव को इन निम्नलिखित सूत्रों से दर्शाते है जो इस प्रकार है :

सूत्र २३८ : ब्राह्मण उत्तम राणा पेरियाल्वारुम तिरुमगलारुम गोपजन्मतै अस्थानं पन्ननिण्णार्घळ.

पिल्लै लोकाचार्य इस सूत्र में बिना जन्म, जाती इत्यादी के भेद-भाव से भागवतों की श्रेष्ठता को समझाते है। यहाँ वे यह समझाते है की ऐसे कई भागवत है जो स्वरूपनुरूप कैंकर्य और भगवद अनुभव हेतु विभिन्न योनियों में जन्म लेना चाहते है। वे आगे कहते है की हालाँकि पेरियाल्वार और आण्डाल देवी ने ब्राह्मण योनी में जन्म लिया। परन्तु वे दोनों चाहते थे की वे वृन्दावन के गोपी बनकर भगवान की सेवा करे। आण्डाल देवी ने स्पष्ट रूप से दर्शाया है की भगवान को प्रिय कैंकर्य ही सभी जीवों का लक्ष्य और उद्देश्य है। इसीलिए हम सभी को ऐसे कैंकर्य का गुन गान करना चाहिए और चाहे कैंकर्य किसी रूप में हो ऐसे कैंकर्य की चाहना करनी और होनी चाहिए।

सूत्र २८५ : कोडुत्तुक कोळ्ळाते कोण्डत्तुक्क कैकुलि कोडुक्कवेन्णुम.

इस प्रकार में, पिल्लै लोकाचार्य जी कहते है की कैंकर्य किस प्रकार करना चाहिए। यह सूत्र २३८ से संबंधित है जिसमें लोकाचार्य जी कहते है की किस प्रकार एक जीव को चाहना होनी चाहिए की भगवान को प्रिय सेवा में कैसे तत्पर रहे। पूर्वोक्त सूत्र (२८४) में कहते है की कैंकर्य निस्वार्थ और अन्याभिलाश रहित होनी चाहिए। कैंकर्य के बदले में किसी भी प्रकार की चाहना नहीं होनी चाहिए। यानि तुच्छ फल की प्राप्ति हेतु कैंकर्य नहीं करना चाहिए। लेकिन इस सूत्र में लोकाचार्य जी कहते है की प्रत्येक जीव को भगवान का कैंकर्य करना चाहिए और अगर भगवान हमारे कैंकर्य से प्रसन्न है तो उनके प्रति और कैंकर्य करना चाहिए। श्री वरवरमुनि इस भाव को अत्यंत स्पष्ट और सरल रूप में आण्डाल की स्वरचना ''नाच्चियार तिरुमोळि'' के ९.७ पाशुर ''इन्नु वाण्तु इत्तनैयुम चेय्दिप्पेरिल णान ओन्नु नूरु आयिरमागक्कोडुत्तु पिन्नुं आळुम चेय्वान'' से समझाते है। इस पाशुर में गोदादेवीजी कहती है की पूर्वोक्त पाशुर के अनुसार उनकी इच्छा थी की वे भगवान तिरुमालिरुन्सोलै अळगर को १०० घड़े माखन और १०० घड़े मिश्रान्न समर्पित करे और जब उन्होंने यह सेवा सम्पूर्ण किया तो उन्होंने देखा की किस प्रकार भगवान उनकी इस सेवा से संतुष्ट है और आनंदोत्फुल्ल चित्त भाव से समर्पित भोग्य आहार को ग्रहण किये। तदनंतर गोदादेवी भी और हर्षोत्त्फुल्ल भाव से कही- मैं आपके लिए इसी प्रकार की सेवा आशारहित होकर मैं तत्पर रहूँगी और आपकी सेवा का आनंद का रसास्वादन करुँगी। अतः कुछ इस प्रकार से गोदादेवी ने स्वरचित पाशुरों में हमारे संप्रदाय के उच्च कोटि विषय तत्त्वों को अत्यंत सरल रूप में प्रकाशित किया है।

तिरुप्पावै के ''२००० पड़ी'' और ''४००० पड़ी'' के व्याख्यान कर्ता श्री आई जनन्याचार्य अपने व्याख्या

की भूमिका में तिरुप्पावै के वैभव को अति सुंदर रूप में वर्णन करते है। इस भूमिका में वे श्रीरामानुजाचार्य के समय हुई एक घटना का उदाहरण देते हुए कहते है कि स्वयं गोदादेवी (जो आल्वारों के उत्तम गुणों का समागम है) ही सर्वोत्कृष्ट और योग्य है जिनसे हम सभी उनकी स्वरचित भावमुग्ध भावनामृत तिरुप्पावै की कथा और श्रवण के रस का आस्वादन कर सकते है। इसीमें श्रीरामानुजाचार्य से एक बार कई शिष्यों ने निवेदन किया की वे गोदादेवीजी के भावमुग्ध भगवानामृत तिरुप्पावै की कथा करे। तब श्रीरामानुजाचार्य ने कहा- हे उपस्थित शिष्यों! आप सभी भली-भाँती जानते है कि तिरुप्पल्लाण्डु की कथा और श्रवण करने के लिए बहुत से वैष्णव होंगे परन्तु भावमुग्ध भावनामृत तिरुप्पावै के नहीं। क्योंकि ''तिरुप्पल्लाण्डु'' निम्न स्थर पर भगवद मंगलाशासन के लिए ही किया गया था और इसकी कथा और श्रवण करने के लिए बहुत सारे योग्य लोग होंगे परन्तु भावमुग्ध भावनामृत तिरुप्पावै की रचना श्री गोदादेवीजी ने भागवतों का मंगलाशासन के लिए किया है जो अत्यंत उच्च श्रेणी (चरमपर्व) की रचना है और जिसका रसास्वादन कुछ महा रसिक भागवत ही कर सकते है। आगे रामानुजाचार्यजी कहते है की- गोदादेवीजी के कैंकर्योत्फुल्ल और भावुक हृदय और तिरुप्पावै के गोपनीय अर्थों को समझने के लिए हमें भी पतिव्रता स्त्री (जो पति पर पूर्ण रूप से निर्भर होती है) के अनुसार भगवान की अहैतुक और निर्हेतुक कृपा पर निर्भर होना चाहिए। आगे और भी कहते है की भगवान की पत्नियाँ (जो स्वानुभव की प्रतीक्षा से कैंकर्य में तत्पर है) भी भावमुग्ध भावनामृत तिरुप्पावै की कथा और श्रवण नहीं कर सकती है। इसका पूर्ण श्रेय केवल श्री गोदादेवीजी का ही है।

श्री वरवरमुनि स्वरचित उपदेश रत्नमाला के २२, २३, २४ पाशुर में गोदादेवीजी के वैभव का गुण गान करते है जो इस प्रकार है :

पाशुर २२ : श्री वरवरमुनि किस प्रकार भावोत्फुल्ल होकर सोचते है, किस प्रकार माता गोदा ने अपने निज निवास परमपद को छोडकर, उन्हें बचाने के लिए (बद्ध जीवों का उद्धार हेतु) इस भव सागर में श्री पेरियाल्वार कि पुत्री के रूप में अवतरित हुई। कहा जाता है कि जिस प्रकार नदी में अपने शिशु को डूबते हुए देखकर उसकी माता स्वयं नदी में कूदती है ठीक उसी प्रकार सभी जीवों की माता गोदादेवी भी इस भव सागर में कूदती (अवतार लेती) है।

पाशुर २३ : इस पाशुर में श्री वरवरमुनि कहते है की गोदादेवी के तिरुनक्षत्र की भांति कोई और नक्षत्र नहीं हो सकता है क्योंकि उनका तिरुनक्षत्र सर्वश्रेष्ट और अत्योत्तम है।

पाशुर २४ : इस पाशुर में श्री वरवरमुनि कहते है की गोदादेवी ''अंजु कुडी'' की बेटी है। उनके दिव्य कार्य आल्वारों के कार्यों से भिन्न और सर्वोत्कृष्ट है। और किस प्रकार से उन्होंने भगवान के प्रति अपने निष्क्रिय प्रेम भावना को छोटे उम्र में ही प्रकाशित किया। पिल्लै लोकम जीयर ''अंजु कुडी'' का मतलब समझाते हुए कहते है :

१) जिस प्रकार पांडवों के वंश का अंतिम उत्तराधिकारी परीक्षित् महाराज थे उसी प्रकार हमारे आल्वारों के वंश की अंतिम उत्तराधिकारी गोदादेवीजी है।

२) वे आल्वारों के प्रपन्न कुल में अवतरित हुई।

३) वे पेरियाल्वर (जो सदैव भगवान के लिए भयभीत थे और मंगलाशासन किया करते थे) की उत्तराधिकारी थी।

आप श्री अपने नाच्चियार तिरुमोळि के १०.१० वाँ पाशुर में कहती है : ''विल्लिपुदुवै विट्टूचित्तार तंगळ देवरै वल्ल परिचु वरुविप्परेल अदु कान्गुमे'' अर्थात् वे स्वतः अपनी ओर से भगवद आराधना नहीं करेंगी अपितु अगर उनके पिताश्री भगवान को स्वयं बुलाकर मनाएंगे तभी आप श्री भगवद आराधना करेंगे।

श्री वरवरमुनि स्वामीजी अपने उपदेश रत्नमाला में सुन्दर रूप से पहले १० आळ्वारों का परिचय देते हुए तदनंतर ''श्री गोदादेवीजी'', ''मधुरकवि आळ्वार'', ''श्री भाष्यकार - एम्पेरुमानार'' का परिचय देते है क्योंकि ये तीन मुख्यतः आचार्य निष्ठावान है।

पूर्वोक्त वाक्यांशों को ध्यान में रखते हुए, श्री गोदादेवीजी के चरित्र का संक्षिप्त वर्णन का अनुभव अब करे :

आण्डालजी श्रीविल्लिपुत्तूर के तुलसी वन (जहा वर्तमान नाच्चियार मंदिर है) में अवतरित हुई थी। जिस प्रकार राजा जनक की भूमि में भू सिंचन के जरिये प्राप्त शिशु का नाम (हल के नाम के अनुसार) सीता रखा गया, उसी प्रकार श्री पेरियाल्वार ने तुलसी वन में प्राप्त शिशु (जो साक्षात् भूदेवी की अवतार है) का नाम कोदै (गोदा-अर्थात् माला) रखा इत्यादी।

आप श्री को बचपन से ही भगवान की दिव्य लीलाओं का रसास्वादन कराया गया था। इसी कारण आप विशेषतः भगवान से आकर्षित थी। आप श्री के पिता, श्री पेरियाल्वार हर रोज वटपत्रशायी भगवान के लिए सुघंदित पुष्पों की माला बनाते थे। भगवान भावनामृत रति के कारण आप श्री भगवान को ही उचित वर मान लिया और यही सुनिश्चित किया। आप श्री के पिता के अनुपस्थिति में, आप ने भगवान की माला (जो हाल ही में भगवान को समर्पित की जाने वाली थी) को स्वयं पहनकर आईने के सामने खड़ी होकर सोचने लगी- अरे! कितनी सुन्दर माला है। मैं खुद इस माला के प्रति आकर्षित हो रही है। क्या यह माला पहनकर मैं भगवान के साथ योग्य हूँ या अयोग्य हूँ? ऐसा सोचकर तदनंतर आप श्री ने माला को उक्त जगह पर रख दी। तदनंतर आप श्री के पिता, श्री पेरियाल्वार आये और यही माला भगवान को अर्पण किये। यह घटना क्रम कई दिनों तक चल रहा

था। अचानक एक दिन आप श्री के पिता ने देखा-आप श्री भगवान के भोग्य वस्तु को (असमर्पित माला) स्वयं पहनकर उसका रसास्वादन कर रही थी। यह देखकर आप श्री के पिता बहुत व्याकुल और निराश हुए और तदनंतर उन्होंने यह माला भगवान को अर्पण नहीं किया। उस रात, भगवान स्वयं आप श्री के पिता जी के स्वप्न में आकर पेरियाल्वार से पूछे– श्रीमान्, आप मेरे लिए फूलों की माला क्यों नहीं लाये? आळ्वार ने कहा- आप सर्वज्ञाता है। मेरी बेटी ने असमर्पित माला को स्वयं पहन लिया। इसी कारण आप को यह उच्चिष्ट माला अर्पण नहीं किया। तदनंतर भगवान बोले- आपने ऐसा क्यों किया? मुझे ऐसा प्रतीत हुआ की आप की बेटी के पहनने के कारण एक विशेष भक्तिरस की सुगंध आई। इस कारण आप इस कर्म को अनुचित ना समझे। मुझे ऐसी मालाये बहुत पसंद है। ऐसा भगवान से सुनकर अत्यंत प्रसन्न और भावुक आळ्वार ने प्रतिदिन- माला बनाकर, फिर

अपनी बेटी को यही माला पहनाकर, फिर भगवान को अर्पण करना शुरू किया। अतः इस प्रकार से अपनी बेटी के प्रति उनका सम्मान और बड़ गया।

श्री आण्डाल नाच्चियार, जन्म से ही अत्यंत भक्ति भाव (परम भक्ति) से संपन्न थी क्योंकि आप श्री भूदेवी अवतार है और स्वभावतः आप श्री को भगवान से अनुरक्ति है। जिस प्रकार वृन्दावन की गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण की प्राप्ति की थी, उन्हीं के अनुसार दर्शाये मार्ग में श्री गोदादेवीजी ने श्रीविल्लिपुत्तूर को तिरुवैप्पडी (वृन्दावन), वटपत्रशायी भगवान को, श्रीकृष्ण भगवान के मंदिर को श्री नंद बाबा का घर, स्थानीय कन्याओं को गोपीस्वरूप इत्यादी मानकर तिरुप्पावै व्रत का शुभारम्भ किया।

आपश्री तिरुप्पावै में निम्नलिखत वेद वाक्यांशों को दर्शाती है :

१) प्राप्य और प्रापक (उपाय और उपेय) स्वयं भगवान ही है।

२) वैष्णव शिष्ठाचार (पूर्वाचार्य अनुष्ठान) का प्रकाशन (क्या सही और क्या गलत)।

३) भगवद अनुभव सदैव भक्तों के सत्संग में करना है और अकेले (स्वार्थपर) होकर नहीं।

४) भगवान के दर्शनार्थ और शरण लेने से पूर्व, सर्वप्रथम उनके द्वारपालक, बलराम जी, यशोदा माता, नंद बाबा इत्यादियों का आश्रय लेना चाहिए।

५) हमें श्री लक्ष्मी जी के पुरुषकार से ही भगवद प्राप्ति होती है और इनका आश्रय लेना प्रपन्नों का कर्तव्य है।

६) हमें सदैव भगवान का मंगलाशासन करना चाहिए।

७) हमें भगवान से कैंकर्य मोक्ष की इच्छा व्यक्त करते हुए उनसे प्रार्थना करनी चाहिए की भगवद्-कैंकर्य का सौभाग्य प्रदान हो और हमारा कैंकर्य भगवान स्वीकार करे क्योंकि भगवद्कैंकर्य जीवात्मा का स्वस्वरूप है।

८) हमें पूर्ण रूप से समझना चाहिए की उपाय भगवान स्वयं है और एक क्षण के लिए यह नहीं सोचना चाहिए की स्वप्रयास भी उपाय है।

९) अन्याभिलाषी न होते हुए, केवल भगवदानुभव और भगवद्प्रीति हेतु भगवद्कैंकर्य करना चाहिए।

उपरोक्त व्रत के नियम पालन करने के बावजूद भी गोदादेवीजी को भगवद्-साक्षात्कार, भगवद्प्राप्ति नहीं हुई और भगवान ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। यह जानकर, गोदादेवीजी अत्यंत शोक ग्रस्त हुई। इसीलिए अपने असहनीय शोक और विरह भाव को स्वरचित ''नाच्चियार तिरुमोलि'' में व्यक्त करती है। हमारे सत्सम्प्रदाय के अनेकानेक विशेष तत्त्वों का निरूपण पूर्वोक्त ग्रन्थ में हुआ है।

वारणमायिरम दशक पद्य में, गोदादेवीजी स्वप्न में भगवान से ब्याह रचने की लीला का वर्णन करती है। तदनंतर भावनारसरत गोदादेवीजी को आप श्री के पिता ने आप श्री को श्रीरंग जी के

अर्चावतार का वैभव दर्शन कराया और इस कारण वश आप श्रीरंग भगवान के प्रति आकर्षित हुई। परन्तु अपनी बेटी की दुर्दशा देखकर पेरियाल्वार से रहा नहीं गया और वे भी शोक और व्याकुलता से ग्रस्त हुए। एक दिन, रात्री में, भगवान श्रीरंगनाथ उनके स्वप्न में आये और कहे- आप ज्यादा चिंतन ना हो श्रीमान्! आपको मैं एक अच्छा शुभ दिन बतावूँगा और उस दिन आपको आपकी बेटी को मुझे सैंपना होगा ताकि उनका उनकी प्रेमिका के मिलन हो। यह सुनकर हर्षित पेरियाल्वार ने भगवान को पुनः नमस्कार किया और बेटी की बारात की तय्यारी शुरू किया। भगवान के स्वयं उनके लिए अर्थात् अपनी प्रेमिका भविष्य पत्नी के लिए पालकी, चामर, छत्री और उनके नित्य और वर्तमान कैंकर्यपरों को श्रीविल्लिपुत्तूर भेजा। आळवार अपने इष्टदेव श्री वटपत्रशायी भगवान से आज्ञा लेकर, बेटी को पालकी में बिठाकर, पूरे बरातीयों के साथ मंगल वाद्य यंत्रों के साथ श्रीरंग की ओर रवाना हुए।

सुसज्जित, अत्यंत सुन्दर, आभूषणों से अलंकृत गोदादेवीजी ने श्रीरंग में प्रवेश करते ही, पालकी से उतरी, मंदिर में प्रवेश करते हुए, तदनंतर मंदिर के गर्भ स्थान में प्रवेश की। तदनंतर आप श्री ने साक्षात् श्रीरंग के चरण कमलों को छुआ और अंतर्धान हो गयी और इस प्रकार से अपने नित्य वास परमपद में प्रवेश किया।

यह दृष्टांत देखकर, उपस्थित अचंबित भक्तों ने भगवान के ससुर जी का अत्यंत आदर और सत्कार किया। भगवान ने तुरंत डंका घोषणा किये की पेरियाल्वार समुद्रराज की तरह उनके ससुर हो चुके है अतः उनका विशेष आदर और सत्कार हो। तदनंतर आप श्री के पिता, पेरियाल्वार श्रीविल्लिपुत्तूर को प्रस्थान हुए और वटपत्रशायी की सेवा में संलग्न हुए।

श्री गोदादेवीजी के जीवन वृत्तान्त की असीमित वैभव को सदैव या साल में मार्गशीष मास में अवश्य सुनते हुए मनन चिंतन करते है।

श्री गोदादेवीजी और उनकी स्वरचित तिरुप्पावै के असली वैभव के दृष्टांत को समझने के लिए, पराशरभट्टर जी के दिव्य वचन से समाप्त करेंगे। पराशर भट्टर कहते है- प्रत्येक प्रपन्न को तिरुप्पावै का पाठ और अनुसन्धान करना चाहिए। अगर यह संभव नहीं है तो मुख्य पाशुर, अगर वों भी संभव नहीं हो तो अंत के दो पाशुर (शित्तम शिरुघाले...) का नित्य पाठ अवश्य करना चाहिए। अगर यह भी संभव नहीं है, तो याद करे श्री पराशर भट्टर को, जिन्हें तिरुप्पावै अत्यंत प्रिय है और जो तिरुप्पावैरत है। केवल यही सोच भगवान को संतुष्ट करती है। जैसे एक गाय, घास की पत्तियों और नकली चर्म से बने बछडे के स्पर्श मात्र से ही निसंकोच दूध देना शूरू करती है, उसी प्रकार भगवान जीवात्मा (जो नित्य तिरुप्पावै या तिरुप्पावैरत श्रीपराशर भट्टर का पाठ मनन चिंतन करता हो) के आचार्य संबंध को जानकर संकोच रहित अपनी कृपा वर्षा बरसाते है। श्री गोदादेवीजी ने अहैतुक कृपा से इस संसार में अवतार लिया और तिरुप्पावै का विशेष प्रसाद अनुगृहित किया ताकि बद्ध जीवात्माएँ भी भगवान के अहैतुक कृपा के पात्र बन सके और इस संसार के भव-बंधनों से विमुक्त होकर नित्य परमपद में भगवदनुभव और भगवद्कैंकर्य के आनंद का रसास्वादन करें।

श्री गोदादेवीजी का तनियन

नीळातुंगस्तनगिरितटी सुप्तमुद्बोध्य कृष्णम्
पारार्थ्यम् स्वम् श्रुतिशतशिरस्सिद्धमद्ध्यापयन्ती।
स्वोचिष्ठायाम् श्रजनिगळितम् याबलात्कृत्य भुङ्क्ते
गोदा तस्यै नम इदं इदं भूय एवास्तु भूयः।।

गरुडपंचमी

- डॉ.बी.ज्योत्स्नादेवी

मोबाइल - ९७०३०३५९५९

पूजा-अर्चनाओं तथा व्रतों का मास है श्रावण मास। इस श्रावण मास में मनाये जाने वाले अनेक त्यौहारों में गरुडपंचमी का एक विशेष स्थान है। कलियुग प्रत्यक्ष दैव श्री वेंकटेश्वरस्वामीजी के उत्साह भक्त और पक्षी वाहक गरुड की स्मृति में यह गरुडपंचमी त्योहार श्रावण मास में मनाया जाता है। इस साल जुलै २७, २०२० के दिन गरुडपंचमी त्यौहार बडे उत्साह के साथ पूरे भारत देश में मुख्य रूप से आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, गुजरात और महाराष्ट्र के कुछ हिन्दू समुदायों द्वारा मनाया जाता है।

गरुत्मान की पैदाइश

मरीचि नाम के एक महर्षि था, मरीचि महर्षि का पुत्र कश्यप था, जो आगे चलकर प्रजापति बना। कश्यप ने दक्षप्रजापति के बारह कन्याओं से विवाह कर लिया। कश्यप की पत्नियों में विनता और कद्रुवा नाम की दो स्त्रियाँ थी। दोनों कश्यप के द्वारा गर्भवतियाँ हुई थी जिनमें विनता ने दो अण्डे दिये थे तथा कद्रुवा ने अनगिनत अंडे दिये थे, जिनसे अन-गिनत साँप निकल कर, खेलने चले गये थे। उन दिनों स्त्रियाँ प्रजनन में अंडे ही दिया करती थी।

कद्रुवा के अंडों से काद्रवेय (साँप) निकल कर अपनी माता की गोद भरने के कारणभूत हुए थे। मगर विनता के अंडे ज्यों के त्यों थे। कितने ही दिन बीत चुके, मगर विनता के अंडों से कुछ न निकला था, तो विनता देवी ने कैतुहल से एक अंडे को लकडी से फोडा तो अंदर एक शिशु था, जिसके पैर न थे। बाहर आकर वह शिशु ने अपनी माँ को उसे अकाल पर जनम देने से डाँटा। विनता को अपने बच्चे की विकलागत के देखकर परेशान हुई। वह नवजात शिशु अंडे से बाहर आते ही उसे हुष्ट-पुष्ट और बलिष्ट कर दिया।

उसकी जाँघ न होने के कारण वह ''अनूर'' कहलाया गया। ऐसे तेजवान और बलवान बालक को देखकर सर्वसाक्षी सूरज भगवान ने उसे अपने रथ का सारथी बनाया। अनूर जो दिव्यांग था उसे इस पद पर नियुक्त होने पर ब्रह्म, विष्णु सभी देवतागणों ने काफी आनंद प्रकट किया। सभी देवतागणों ने माँ बेठे पर पुष्प वृष्टि कर दी तो माँ विनता का खुशी का ठिकाना न रहा। अपने भूल के कारण एक विकलांग

बच्चे को जन्म देने पर भी वह बच्चे अच्छे पद पर नियुक्त हुआ देखकर बहुत प्रसन्न हुई।

अब विनतादेवी दूसरे अंडे को फोडने से दूर रही। वह रोज अंडे की हिफाजत करती रही और अंडे से बाहर निकलने के अचंभे शिशु की राह देखती थी। आखिरकार अंडा फोडकर, उसमें से एक महान वीर, शूर, शिशु निकल पडा। आश्चर्य कि उस शिशु के बलवान पंख दो थे। पैदा होते ही वह माँ की गोद में नही, बल्कि आसमान में विचरने चला गया था। पंख होने के नाते बालक ''गरुत्मान'' कहलाया गया।

गरुडपंचमी में माँ और बेटे के प्यार और स्नेह का प्रतीक है और एक दूसरे के बीच का बंधन है। माँ विनता को अपने शक्तिमान बेटे से गर्व होता था। गरुड किसी भी काम को एक पल में सँवारता था। विनता असकी बहन कद्रुवा (कश्यप की एक और पत्नी) की सेवा में हमेशा जुडी रही थी। दिन-रात उसकी सेवा एक दासी के रूप में करती थी। यह देखकर गरुड अपनी माँ को उसकी दासता को दूर कर दिया।

गरुत्मान दुनिया का सर्व प्रथम दासता का विरोधी था।

स्वतंत्रता के लिए लडने वाले प्रथम स्वतंत्रता सिपाही है। अतएव माँ विनता का दुलारा बेटा है। माँ का दास्यता को दूर करने के लिए यह वीर सेनानी स्वर्ग से भूतल पर अमृत ले आया था। मातृभक्ति से युक्त गरुड की यादगार में गरुडपंचमी का त्योहार मनाया जाता है। इस प्रकार हर माँ अपने बच्चों को दृढ संकल्प और शक्ति दिलाने के उद्देश्य से इस व्रत का पालन करते हैं।

वैदिक साहित्य में, यह कहा जाता है कि पारिजात, पक्षी गरुड के दो पंख ब्रिहट और रथंतारा के रूप में जाने वाले सामवेद के दो विभाग है। जब गरुड़ अपने पंख फडफडाते है, तो हम सामवेद के मंत्रों के जप को सुन सकते है। भगवान विष्णु के हर मंदिर में श्री गरुड की एक मूर्ति होती है, जो भगवान के सामने हाथ जोडकर बैठे है। गरुड अन्य नामों से भी जाने जाते है जैसे पक्षिराज, वैनाट्य, सुपर्णा, गरुथमंत, पेरिया, विनतसुता, विष्णुवाह आदि।

गरुडपंचमी से जुडी पूजा और व्रत महिलाये द्वारा अपने बच्चों के कल्याण और अच्छे स्वास्थ्य के लिए मनाया जाता है, कुछ क्षेत्रों में गरुडपंचमी को नाग पंचमी भी कहते है और इस व्रत से भक्तों को सभी प्रकार के नाग दोषों से राहत मिलती है।

गरुडपंचमी के पावन पर्व पर, तिरुमल में श्री बालाजी भगवान अपने प्रिय वाहन श्रीमान् गरुत्मान पर आसीन होकर, तिरुनगरी की चार माडावीथियों में विचरते हुए भक्तों को अशेष वर प्रदान करेंगे। सभी भक्त अपने नेत्रों से उनका दर्शन कर प्रसन्न होते है।

वरलक्ष्मीव्रत

- डॉ.बी.के.माधवी
मोबाइल - ९४४१६४६०४५

मातर्नमामि कमले! कमलायताक्षी
श्री विष्णुहृद् कमलवासिनी, विश्वमातः
श्रीरोधजे कमल कोमल गर्भगौरी
लक्ष्मी प्रसीद सततम् नमताम् शरण्ये।

श्री महालक्ष्मी - 'श्री' यानी तत् सत् शब्दवाच्य परब्रह्म है। लक्ष्मी का अर्थ चिह्न है। श्री महालक्ष्मी का अर्थ है परब्रह्म का चिह्न या परब्रह्म का प्रतीक। इतना ही नहीं लक्ष्मी पद का अर्थ है - शुभ, शांति, आनंद, पुष्ठि, तुष्ठि जैसे कई शाब्दिक अर्थ है। ''जगत् सर्व लक्ष्मीमयं'' अर्थात्- सारे जग लक्ष्मीमय है। इसीलिए पत्नी को गृहलक्ष्मी, खेती, धान्य राशियों को धान्यलक्ष्मी; संतान कामुक संतानलक्ष्मी के रूप में, वेदों ने श्री लक्ष्मी कहकर, मुमुक्षुओं ने मोक्षलक्ष्मी कहकर, दारिद्र्य को भी ज्येष्ठालक्ष्मी के रूप में बताये जा रहें है। जो लक्ष्मी देवी की उपासना करके पूजा करते हैं, वर माँगते हैं वर प्राप्ति मिलने पर 'वरलक्ष्मी' कहकर पूजा करते हैं।

क्षीरसागर मंथन में लक्ष्मीदेवी, चंद्र, कामधेनु, ऐरावत आदि के साथ संपदा समृद्धि से क्षीरसागर कन्या के रूप में जन्म हुई। इसके बाद श्रीमहाविष्णु से विवाह की थी। लक्ष्मी कटाक्ष से ही ऐश्वर्य की सिद्धि होती है। ऐश्वर्य सिद्धि के बिना पोषणा शक्ति नहीं होगी। चतुर्दश भुवनों का पालन करने वाले आदिनारायण ने इसीलिए इस महालक्ष्मी के अपने वक्षःस्थल में स्थित किया। इसलिए हम उनको श्रीधर भी कहते हैं। देवी महालक्ष्मी में अष्टलक्ष्मी निवास करती है। 'धनलक्ष्मी, धान्यलक्ष्मी, धैर्यलक्ष्मी, विद्यालक्ष्मी, विजयलक्ष्मी, गजलक्ष्मी, वीरलक्ष्मी, संतानलक्ष्मी के साथ-साथ वरलक्ष्मी को भी मिलाकर नवलक्ष्मी का रूप है। महालक्ष्मी इन नवलक्ष्मी रूपों में वरलक्ष्मी का रूप विशिष्ट है। क्योंकि सारे लक्ष्मियों की कृपा इस लक्ष्मी के द्वारा प्राप्त होती है। भारत देश में विशेषकर दक्षिण देश की स्त्रियाँ श्रावण मास में पूर्णिमा के शुक्ल पक्ष के शुक्रवार के दिन ''वरलक्ष्मीव्रत'' की पूजा करती हैं। इस पूजा को विवाहित स्त्रियाँ अपने परिवार के सुख-समृद्धि के लिए खासकर अपने पतिदेव के कल्याण के लिए मनाती हैं। इस महीने की और एक विशेषता यह भी है कि- भगवान महाविष्णु का जन्म भी इसी महीने में हुआ था जो श्रवणा नक्षत्र भी कहते है।

इसलिए इस महीने में देवी लक्ष्मी बड़ी भक्ति एवं श्रद्धा के साथ अपने पति देव की पूजा विशेष

रूप से करती है। इस महीने में वरलक्ष्मी देवी की उपासना करने से अष्ठ ऐश्वर्यों की प्राप्ति होगी। यह वरलक्ष्मी व्रत पूजा हर साल श्रावण महीने की पूर्णिमा के शुक्ल पक्ष के शुक्रवार के दिन की जाती है। इस पूजा को विवाहित स्त्रियाँ अपने परिवार के सुख के लिए, मुख्य रूप से अपने पति देव के कल्याण के लिए मनाती हैं। इस पूजा से घर में लक्ष्मी देवी का वास एवं सुख-समृद्धि की प्राप्ति होती है। धार्मिक-मान्यताओं के अनुसार यह व्रत विवाहित-स्त्रियों को संतान प्राप्ति का सुख प्रदान करता है। इस पूजा में विवाहित स्त्रियाँ जो व्रत का आचरण करते हैं वे अपने आस-पास के स्त्रियों को घर पर आमंत्रित करती है। उन्हें जल-पान देकर उनका स्वागत करती है। सभी स्त्रियाँ माता का दर्शन करते हैं। व्रत करने वाली औरत पूजा के लिए आये हुए औरतों को अपने शक्ति के अनुसार प्रसाद का वितरण करती है। उस प्रसाद में हल्दी-कुंकुम से लेकर साड़ी या अंगिया, हल्दी का धागा, पान-सुपारी, कंगन, चंदन, फूल-फल और प्रसाद आदि देते हैं। इसे वायन कहते हैं।

एवं सम्पूज्य कल्यानिं वरलक्ष्मीं स्वशक्तितः
दातव्यं द्वादशा पूपं वायनं हि द्विजायते।

इस प्रकार माता वरलक्ष्मी देवी को अपने शक्ति के अनुसार पूजादि करके ब्राह्मणों को वायन देना है।

वरलक्ष्मी देवी की व्रत कथा

नमस्ते स्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते
शंक चक्र गदा हस्ते महालक्ष्मी नमोस्तुते।

पौराणिक कथा के अनुसार मगध राज्य में कुण्डी नामक एक नगर था। उस गाँव में चारुमती नामक एक विवाहित स्त्री अपने पतिदेव एवं परिवार जनों के साथ एक झोंपडी में जीवन बिता रही थी। गरीब

परिवार होने पर भी चारुमती भगवान के प्रति बढी श्रद्धा रखती थी। चारुमती कर्तव्यनिष्ठ नारी थी जो अपने सास, ससुर एवं पति की सेवा करके माँ लक्ष्मीजी की पूजा-अर्चना एक आदर्श नारी का जीवन व्यतीत करती थी। उसका पवित्र स्नेह एवं सच्ची भक्ति पर देवी लक्ष्मी बहुत खुश हुई। देवी ने एक दिन उसके सपने में आकर कहा, श्रावण महीने के शुक्ल पक्ष के शुक्रवार में वरलक्ष्मी व्रत का पालन करके मेरी उपासना करने पर सभी समृद्धि प्राप्त होगी।

इस व्रत के प्रभाव से तुम्हें मनोवांछित फल प्राप्त होगा। इस सपने से चारुमती आश्चर्य में पड गयी। अगले दिन उसने अपने परिवार जनों को इस सपने के बारे में बताया। वे सब एक मन से कहने लगे कि वरलक्ष्मी व्रत की उपासना करेंगे। वरलक्ष्मी पूजा की महिमा एवं व्रत के प्रभाव के बारे में जानकर अब वे भी उसके साथ मिलकर देवी की उपासना एक त्योहार के समान मनाने को तैयार

हो गये। देवी के कहे अनुसार गाँव की विवाहित स्त्रियाँ वरलक्ष्मी व्रत उपासना के लिए उचित प्रबन्ध करने लगीं। नियत दिन वे स्त्रियाँ इकट्टे होकर देवी लक्ष्मी की मूर्ति को सजाकर उपासना करने लगी। वे सब एक स्वर में -

पद्मासनस्थिते देवी परब्रह्म स्वरुपिणी
परमेशी जगन्मातार्महालक्ष्मी नमोस्तुते।।

कहकर सभी नारियाँ कलश की परिक्रमा करने लगी, देवी की आरती उतारने पर उनकी श्रद्धा एवं भक्ति से देवी अत्यंत प्रसन्न हुई। जिससे उनकी झोंपडी सुन्दर महल बन गयीं। वहाँ धन, धान्य और अष्ट ऐश्वर्य भर गये। समस्त नारियों के शरीर विभिन्न स्वर्ण आभूषणों से सजा गए। सभी नारियों ने चारुमति की प्रशंसा करने लगी। क्योंकि चारुमति ने ही उन सबको इस व्रत विधि के बारे में बतायी थी। वरलक्ष्मी पूजा की महिमा की खबर चारों दिशाओं में फैल गयी। तब से यह त्योहार भारत में विवाहति स्त्रियों के द्वारा हर साल धूम-धाम से मनाया जाता है।

अपने पति देव तथा परिवार जनों की भलाई एवं सुख के लिए की जा रही यह पूजा वास्तव में भारत की भव्य संस्कृति एवं उत्तम सभ्यता का श्रेष्ठ उदाहरण है। भारत में हिन्दू धर्म के लोगों का संपूर्ण विश्वास है कि वरलक्ष्मी की पूजा देवी महालक्ष्मी की पूजा है। इसीलिए तो श्री वेंकटेश्वर स्वामी की पत्नी अलमेलुमंगा (जो महालक्ष्मी का अवतार है) की सन्निधि में सभी स्त्रियाँ वरलक्ष्मीव्रत मनाना चाहती हैं। वरलक्ष्मी व्रत के दिन तिरुचानूर में स्त्रियाँ व्रत मनाने आती हैं। लगता है साक्षात् श्रीमहालक्ष्मी के सम्मुख बैठकर पूजा कर रहे हैं। यहाँ बैठकर पूजा करते समय स्त्रियाँ अन्नमाचार्य के गीत याद करते हुए पूजा करते है - जो-

कमलासन हित गरुडगमन श्री
कमलनाभ नी पदकमलमे शरणु

अर्थात् श्रीमहालक्ष्मी कमलप्रिया है महालक्ष्मी के साथ-साथ श्री वेंकटेश्वर स्वामी की भी पूजा दर्शाते हैं। अन्नमाचार्य के गीत में महालक्ष्मी श्रीहरि की प्रिया कहते हुए गाया है कि -

जयलक्ष्मी, वरलक्ष्मी संग्रामवीरलक्ष्मी
प्रियुरालवै हरिकि वेरसितिवम्मा - अम्मा।।

ऐसी माता का अनुग्रह पाने केलिए वर देने वाली वरलक्ष्मी देवी की उपासना करेंगे और सुख-समृद्धि प्राप्त करेंगे।

कमला सती मुख कमल
कमल हित कमलप्रिया कमलेक्षणा।
कमलासन हित गरुडगमन श्री
कमलनाभ नी पदकमलमे शरणु।।

वंदे पद्मकरां प्रसन्नवदनां सौभाग्यदां भाग्यदां
हस्ताभ्या मभयप्रदां मणिगणैर्नानाविधैर्भूषिताम्,
भक्ताभीष्टफलप्रदां हरिहरब्रह्मादिभिस्सेविताम्
पार्श्वे पंकजशंखपद्मनिधिभिर्युक्तां सदा शक्तिभिः।

सरसिजनयने सरोजहस्ते
धवलतरांशुकगंधमाल्यशोभे,
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे
त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीदमह्यम्।

- श्री महालक्ष्मीअष्टोत्तर (ध्यानम्)

लॉकडाउन के अनंतर की तिरुमल श्री बालाजी के प्रारंभिक दर्शन की दृश्यमालिका।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

तिरुमल श्री बालाजी के मंदिर में शास्त्रोक्त के तौर पर आणिवर आस्थान कार्यक्रम संपन्न हुआ। इस महोत्सव में श्रीश्रीश्री बडे जीयंगार स्वामीजी, श्रीश्रीश्री छोटे जीयंगार स्वामीजी, धर्मपत्नी सहित ति.ति.दे. न्यास-मंडली के अध्यक्ष श्री वाई.वी.सुब्बारेड्डी, कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री अनिल कुमार सिंघाल, आई.ए.एस., धर्मपत्नी सहित अतिरिक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री ए.वी.धर्मारेड्डी एवं अन्य उन्नताधिकारिगणों ने भाग लिया था।

कोरोना वायरस निवारण हेतु समस्त लोकों की मानवाली के आयुरारोग्यों के लिए प्रार्थना करते हुए ति.ति.दे. द्वारा आयोजित राहुग्रह चूडामणि सूर्यग्रहण जपयज्ञ के दृश्य।

(गतांक से)

सियाराम ही उपाय

शरणागति मीमांसा

(षष्टम खण्ड)

सियाराम ही उपेय

मूल लेखक
श्री सीतारामाचार्य स्वामीजी, अयोध्या

प्रेषक
दास कमलकिशोर हि. तापडिया
मोबाइल - ९४४९५१७८७९

९९

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्री देवराज गुरु कहते हैं कि हे महात्माओं! यह जीव संसार बंधन से छूट कर जब तक परमपद में नहीं चला जाता है तब तक अनेक प्रयत्न करने पर भी इसको सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता। इन चौदह लोकों के जितने सुख हैं, उन सब में दुःख मिला हुआ है। अपने अज्ञान के वश में होकर यह जीव थोड़ा भी लौकिक सुख प्राप्त हो जाने पर अपने को कृत-कृत्य तथा भाग्यवान मानने लगता है। परन्तु शास्त्रों का तथा बड़े-बड़े पहुँचे हुए अनुभवी महात्माओं का तो बारम्बार यही कहना है कि :-

नदेहिनां सुखं किञ्चिद्विद्यते विदुषामपि।

तथा च दुःखं मूढानां वृथा हं करणं परम्।।

(श्रीमद्भागवत स्कं.११ श्लोक १८वां)

कोन्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरन्तिके।

आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टि दः।।

(श्रीमद्भागवत स्कं.११ श्लोक २०वां)

याने इस संसार मात्र में जितने देहधारी चेतन हैं उनमें किसी को भी दुःख रहित सुख नहीं प्राप्त है, चाहे पामर हो या पण्डित, धनी हो या गरीब, राजा हो या प्रजा नौ महीना गर्भ में निवास करके ही संसार में जन्म लेना होता है और इच्छा नहीं रहने पर भी अनेक रोगों को भोगना पड़ता है। बुढ़ापे की बिपदा भोगनी पड़ती है। इच्छा बिना भी कुटुम्ब को छोड़ कर खुद रोते हुए एक दिन मरना पड़ता है। जीवों के पीछे जब तक जन्म-मरण की बला लगी है तब तक किसी प्रकार भी सुखी नहीं माना जा सकता। अपने अज्ञान बश भले ही सुख माना करे। जैसे किसी को दो महीने के बाद फांसी का आर्डर हो चुका और उसको कोई भी चीज फांसी के चिंता के कारण सुखदाई नहीं बनती। उसी प्रकार जिसको मृत्यु के दिन का स्मरण बना रहता है उसको कैसा भी लौकिक सुख क्यों न प्राप्त भया हो; परंतु आत्मा में किसी प्रकार भी सच्ची शान्ति नहीं मिलती है। जन्म और मरण का भयंकर दुःख जो लोग भूले रहते हैं; उन्हीं को कुछ देर के लिये संसार सुहावना मालूम पड़ता है।

और इस संसार का स्वरूप भलीभांति समझ चुके हैं- जो कुछ सत्संग कर चुके हैं ऐसे मुमुक्षुओं को तो संसार कभी सुखदाई नहीं बनता। इस संसार में रहने वाले जीवों की अपेक्षा देव लोक में रहने वालों को कुछ ज्यादा सुख है परन्तु शास्त्रों का तो उनके प्रति भी यही कहना है कि :-

तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते।

क्षीण पुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः।।

जब तक उन लोगों के पुण्यों की परिसमाप्ति नहीं होती है तब तक ही वे देव लोक में सुख पाते हैं। जब पुण्यों का नाश हो जाता है तो इच्छा नहीं रहते हुए भी परबश फिर सफर चक्र में काल के द्वारा गिरा दिये जाते हैं। स्वर्गादिक लोकों में रहने वाले जीवों की तथा वहाँ रहने वाले देवों की भी कालान्तर में यही दशा है। श्रीगीताजी में खुलासा श्री भगवान की श्री मुख वाणी है कि :-

आब्रह्म भुवना ल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।

भगवान अर्जुनजी से कहते हैं कि हे अर्जुन! ब्रह्मलोक से लेकर जितने लोक हैं उन में जीने वालों का आवागमन बनाही रहता है। सिर्फ माया से परे जो मेरा परमपद है वहाँ ही जीने वाले बड़भागी जीव सदा के लिये जन्म-मरण चक्र से छुटकारा पाकर दुःख रहित असीम सुख को प्राप्त होते हैं।

श्री देवराज गुरु कहते हैं कि शास्त्रों का तथा बड़ों का बारंबार यही समझाना है कि न इस संसार में रहने वाले जीवों को, न स्वर्गादिक लोकों में रहने वालों को दुःख रहित सुख प्राप्त भया है, क्योंकि इन सब के पीछे मृत्यु की बला लगी हुई है। परंतु जो लोग सत्संग नहीं किये हुए हैं उनके दिमाग में यह बात जल्दी से नहीं आती है और जो सच्चे मुमुक्षु महात्माओं के सत्संग के द्वारा इन पूर्वोक्त बातों को भलीभांति जान समझ चुके हैं तथा अनेक बार परबश कुटुंब के वियोग में शोक ग्रस्त हो दुःख भोग चुके हैं; उनका तो इस संसार से बहुत जी घबड़ाया करता है। हे महात्माओं! वास्तव में जिसमें जरा भी कुछ समझ होगी वह इस संसार में सुखी नहीं रह सकेगा। जिस बड़भागी जीव ने इस चौदह लोक रूप महा जेलखाने से छुटकारा पाकर प्रकृति से परे बिरजा पार जो परमपद है उसको पा लिया उसी का मनुष्य देह पाना सफल हुआ, और मनुष्य देह पाकर भी इस संसार चक्र में आना जाना बना रहा तो उसका जन्म पृथ्वी का भार रूप ही भया। मनुष्य मात्र को लापरवाही छोड़ कर शास्त्रों के उपदेशों की कदर करता हुआ संसार बंधन से छूट कर परमपद मिलने के लिए अवश्य प्रयत्न करना चाहिए और जन्म-मरण चक्र से छूट कर परमपद में जाने कि लिये शास्त्रोक्त उपाय पर पूर्ण विश्वास करके उस मार्ग के ऊपर अपनी परिस्थिति कर लेनी चाहिए। क्योंकि देव दुर्लभ इस मनुष्य देह को पाकर जो भवसागर से तरने का प्रयत्न नहीं करता है वह जीव बहुत मन्दभागी है, हद्द से ज्यादा बेसमझ है! जब आत्मा निकल जाता है तो उसे फिर बहुत पछताना पड़ता है और ऐसा अमूल्य समय निकल जाने पर फिर पछताने से कुछ भी लाभ नहीं होता है। इससे हरेक देहधारी को चाहिये कि जैसे शरीर पोषण के लिये अनेक प्रयत्न किया करता है उसी तरह अपने आत्मा के कल्याण के लिये अवश्य कुछ न कुछ समय जरूर दिया करें क्योंकि जब तक परमपद का सुख इस जीव को नहीं प्राप्त होगा तब तक किसी प्रकार भी यह सुखी नहीं हो सकेगा। इसके द्वारा जुटाया हुआ जो अनेक प्रकार का सांसारिक सुख है यह अनित्य है। सदा के लिये नहीं है। इच्छा के बिना भी काल के द्वारा छुड़ा दिया जाता है। एक परमपद का ही ऐसा असीम सुख है कि जिसके मिल जाने के बाद फिर कभी दुःख का सामना करना ही नहीं पड़ता है। ऐसा देव दुर्लभ मनुष्य शरीर पाकर भी जो भवसागर से नहीं तरता है उसको आत्मा के घात करने वालों की दुर्गति प्राप्त होती है। जैसे कि बड़ों का वचन हैः-

दोहा- *जो न तरै भवसागरहिं, नरसमाज अस पाय।*
वे कृत निन्दक मन्दमति, आतम हन गति जाय।।

क्रमशः

भक्त प्रह्लाद के दिव्य गुण

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवाँघ्रि सेवक दास
हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौराँग दास
मोबाइल - ९८२१९१४६४२

भक्तगण एवं संत पुरुष सदैव प्रह्लाद महाराज के दिव्य गुणों का गायन करते हैं। भक्तों एवं संतों की कथा के सभी समारोहों में आनंदमय श्रवण के लिए प्रह्लाद के प्रसंग को अवश्य चुना जाता है। ''प्रह्लाद जैसे दिव्य एवं पवित्र पुत्र के होने पर भी उनके पिता हिरण्यकशिपु में अपने पुत्र से इतनी वैरता का भाव कैसे पैदा हुआ?'' - युधिष्ठिर महाराज के इस प्रश्न से श्रीमद्भागवतम् के सातवें स्कन्ध में संत नारद मुनि द्वारा सुनाई गई प्रह्लाद की कथा का आरंभ हुआ। पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए एक भक्त की कथा का श्रवण एक भक्त के मुखारबिंदु से ही करना चाहिए। राजा युधिष्ठिर ने महान भक्त प्रह्लाद की कथा का श्रवण संत नारद मुनि के मुखारबिंदु से स्वयं परम भगवान श्रीकृष्ण की उपस्थिति में किया। चलो इसे विस्तार में समझते हैं।

अपने भाई की मृत्यु का बदला लेने का निश्चय करने के पश्चात् मृत्युरहित होने के लिए हिरण्यकशिपु ने कठोर तपस्या प्रारंभ कर दी। उसने मंदर पर्वत की घाटी में अपने पाँव के अँगूठे के बल भूमि पर खड़े होकर अपनी भुजाएँ ऊपर किये तथा आकाश की ओर देखते हुए ब्रह्माजी की प्रार्थना करना प्रारंभ किया। उसकी कठोर तपस्या से देवतागण घोर चिंता में डूब गये और वे शीघ्र ही अपने कष्ट का वर्णन करने और उसके निवारण हेतु ब्रह्माजी के पास पहुँचे। वास्तव में असुर की उस कठोर तपस्या से जब सभी लोकों के लिए खतरा पैदा हो गया तब सहायता के लिए ब्रह्माजी के पास जाना देवताओं की प्रतिक्रिया थी। ब्रह्माजी अपने साथ में भृगु एवं दक्ष जैसे संतों के साथ तपस्या वाले स्थान पर पहुँचे और तपस्या करते हुए हिरण्यकशिपु के दृढ़ निश्चय को देखकर आश्चर्यचकित हो गये। असुर का लगभग संपूर्ण शरीर चींटियों ने खा लिया था और वह मात्र अस्थियों में उपस्थित प्राण-वायु के सहारे जीवित था। ब्रह्मदेव उससे बहुत प्रसन्न हुए और उसे इस प्रकार संबोधित किया ''मेरे प्रिय हिरण्यकशिपु! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपनी तपस्या रोक दो। मैं तुम्हें तुम्हारी इच्छानुसार वर देने के लिए तैय्यार हूँ। तुमने इतनी अधिक कठोर तपस्या की है जो महान संत पुरुषों के द्वारा भी करना असंभव है।'' उन्होंने अपने कमण्डल से हिरण्यकशिपु के शरीर पर जल छिड़का। पवित्र जल की

शक्ति से हिरण्यकशिपु असीमित बल एवं महान तेज के साथ प्रकट हुआ। उसने ब्रह्माजी को दण्डवत प्रणाम किया और निम्न प्रकार अपनी इच्छा प्रकट की।

''हे प्रभु! कृपया मुझे मृत्युरहित होने का वर दीजिये। मैं मृत्यु से मुक्ति का वरदान चाहता हूँ। कृपया मुझे यह वर दें कि मैं न तो घर के अंदर, न घर के बाहर, न दिन के समय-न रात में, न भूमि पर, न आकाश में मरूँ। मुझे वर दें कि मेरी मृत्यु आप के द्वारा उत्पन्न किसी जीव के हाँथों न हो। मैं किसी हथियार से, किसी मनुष्य या देवता के द्वारा या अधोलोक के किसी सर्प द्वारा न मारा जाऊँ। युद्धभूमि में मेरे समक्ष कोई भी शत्रु न टिक सके। मुझे सभी देवताओं के ऊपर एकछत्र स्वामित्व प्रदान करें। और मुझे आठों योग शक्तियाँ पूर्ण रूप में प्रदान करें।''

यद्यपि हिरण्यकशिपु द्वारा माँगे हुए वरदानों को पाना असंभव था फिर भी ब्रह्माजी ने दया करके उसे वे वरदान दिये। वास्तव में उन्होंने हिरण्यकशिपु से भी यही कहा और अपने लोक वापस चले गये। तुरंत ही तीनों लोकों पर आक्रमण करके हिरण्यकशिपु ने अपना आसुरी स्वभाव दिखाना प्रारंभ कर दिया। उसने तीनों लोकों को जीत लिया और इन्द्र के महल को अपना निवास स्थान बना लिया। वह सभी देवताओं से स्वयं को प्रतिदिन नमन करवाता था। वह देवताओं की सहायता के बिना ही तीनों लोकों पर राज्य करने लगा। तब सभी देवता शरण में आये सभी जीवों के संरक्षक भगवान विष्णु को शरणागत हुए। उस समय देवताओं को निम्न दिव्य वाणी सुनाई पड़ी।

''हे देवताओं! डरो मत। तुम सब का कल्याण हो। कृपया मेरा कीर्तन करो। मेरी लीलाओं का श्रवण करो। इन सभी कार्यों का उद्देश्य समस्त जीवों को आशीष देना है। मैं हिरण्यकशिपु के दुष्कर्मों से पूरी तरह परिचित हूँ। मैं शीघ्र ही उन्हें रोक दूँगा। कृपया उन्हें सहन करो। ज्यों ही वह अपने दिव्य, विनम्र एवं भक्तिमान पुत्र पर अत्याचार प्रारंभ करेगा तब मैं तुरंत उसका वध कर दूंगा। मैं ब्रह्माजी से महान वरदानों के प्राप्त होने पर भी उसका विनाश कर दूंगा।''

भगवान विष्णु से आश्वासन प्राप्त करके सभी देवताओं को विश्वास हो गया हिरण्यकशिपु की मृत्यु निश्चित है और वे प्रसन्नता पूर्वक अपने निवासस्थानों पर लौट गये। वे संपूर्ण जगत की हिरण्यकशिपु के अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त होने की शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करने लगे।

हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे। भक्त प्रह्लाद उनमें से सर्वोत्तम थे। यद्यपि वे केवल पाँच वर्ष के थे फिर भी उनमें असीमित दिव्य गुण विद्यमान थे और वे गुणों के सागर की भाँति थे। वे परम सत्य जानने के बहुत जिज्ञासु थे। वे परमात्मा की भाँति समस्त जीवों के प्रति अत्यंत दयालु थे।

वे सभी के मित्र, बड़ों के सेवक एवं निर्धनों के पिता की भांति व्यवहार करते थे। समान स्तर के लोगों से भाई की भांति प्रेम करते थे तथा अध्यापकों को भगवान की तरह पूजते थे। राज परिवार के तथा सुंदर एवं धनी होने पर भी उनमें घमंड बिल्कुल नहीं था। आसुरी परिवार में जन्म होने पर भी उन्होंने भगवान विष्णु की भक्ति प्राप्त की। वे कभी किसी भक्त से ईर्ष्या नहीं करते थे। न ही विपरीत परिस्थितियों में कभी विक्षुब्ध होते थे। उन्हें किसी भौतिक वस्तु से कोई लगाव नहीं था।

वास्तव में भक्त प्रह्लाद की क्रीडा एवं मनोरंजन में बिल्कुल रुचि नहीं थी। वे सदैव भगवान श्रीकृष्ण के

विचारों में लीन रहते थे। कृष्णभावनामृत में रहने के कारण वे आश्चर्यचकित थे कि इस जगत के कष्टमय होने पर भी लोग कृष्णजी के पास क्यों नहीं आते हैं। इस प्रकार भगवान कृष्ण में लीन होने के कारण उन्हें पता भी नहीं चल पाता था कि उनकी शारीरिक आवश्यकताएँ जैसे बैठना, चलना, खाना, सोना, पीना तथा बोलना किस तरह स्वतः संपन्न होती थीं।

उनके ये सभी कार्य किसी प्रयत्न के बिना स्वतः ही हो जाते थे। वे हर पल भगवान कृष्ण को देखते थे और कभी-कभी भाव-विभोर होकर रोते भी थे। वे भक्ति के विभिन्न भावों में खो कर हँसते, रोते, नाचते और चिल्लाते थे। वे भगवान कृष्ण से अलग होने के भाव से अचानक दुःखी हो जाते थे।। लेकिन जब वे कृष्णजी को अपनी ओर आते हुए देखते तो भाव-विभोर होकर कहते थे ''अरे, मेरे कृष्ण आ रहे हैं।'' कभी-कभी वे भगवान के प्रगाढ़ प्रेम में भगवद्लीलाओं का अभिनय भी करते थे। प्रह्लाद महराज के यह दैवी गुण आध्यात्मिक ज्ञान से विहीन व्यक्ति के अस्तित्व को भी पवित्र करने वाले हैं।

राजा हिरण्यकशिपु ने शुक्राचार्य को अपना गुरु स्वीकार किया था। शुक्राचार्य के षण्ड तथा अमर्क नामक दो पुत्र राजमहल के पास ही एक आश्रम में रहते थे। हिरण्यकशिपु ने उसी आश्रम में प्रह्लाद की शिक्षा की व्यवस्था की थी। यद्यपि अध्यापक राजनीति, युद्धनीति, अर्थशास्त्र जैसे अनेक विषयों को पढ़ाते थे लेकिन भक्त प्रह्लाद की उनमें कभी कोई रुचि नहीं थी। वे सदैव भगवान विष्णु के दिव्य ध्यान एवं स्मरण में लीन रहते थे। इस प्रकार कुछ समय तक उनकी शिक्षा चलती रही।

तिरुमल में दर्शनीय क्षेत्र

स्वामिपुष्करिणी : मंदिर के निकट स्थित यह तालाब अतिपवित्र है। यात्री मंदिर में प्रवेश करने के पूर्व इसमें स्नान करते हैं। आत्मा व शरीर की शुद्धि के लिए यहाँ स्नान करना श्रेष्ठ है।

आकाश गंगा : मंदिर की उत्तरी दिशा में लगभग ३ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

पापविनाशनम् : मंदिर की उत्तरी दिशा में ५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

वैकुंठ तीर्थ : मंदिर की ईशान दिशा में लगभग ३ कि.मी. दूरी पर स्थित है।

तुम्बुरु तीर्थ : मंदिर की उत्तरी दिशा में १६ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

भूगर्भ तोरण (शिलातोरण) : यह अपूर्व भूगर्भ शिलातोरण मंदिर की उत्तरी दिशा में १ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

ति.ति.दे. के बाग-बगीचे : देवस्थान के दिशा-निर्देश सुंदर व आकर्षक बगीचे लगे हुए हैं, जिनमें विशिष्ट पेड व पौधे मिलते हैं।

आस्थान मंडप (सदस हाल) : यहाँ धर्म प्रचार परिषद् के दिशा-निर्देश में धार्मिक कार्यक्रम चलाये जाते हैं। जैसे भाषण, संगीत-गोष्ठी, हरिकथा-गान एवं भजन।

श्री वेंकटेश्वर ध्यान ज्ञान मंदिर (एस.वी. म्यूजियम्) : इस कलात्मक सुंदर भवन में एक म्यूजियम्, ध्यान केंद्र तथा छायाचित्र-प्रदर्शिनी आयोजित है।

ध्यान केंद्र : तिरुमल के एस.वी. म्यूजियम् एवं वैभवोत्सव मंडप में स्थित ध्यान केंद्रों में भगवान पर ध्यान केंद्रित कर भक्त शांति को प्राप्त कर सकते हैं।

(गतांक से)

अन्नमय्या के जीवन का इतिहास

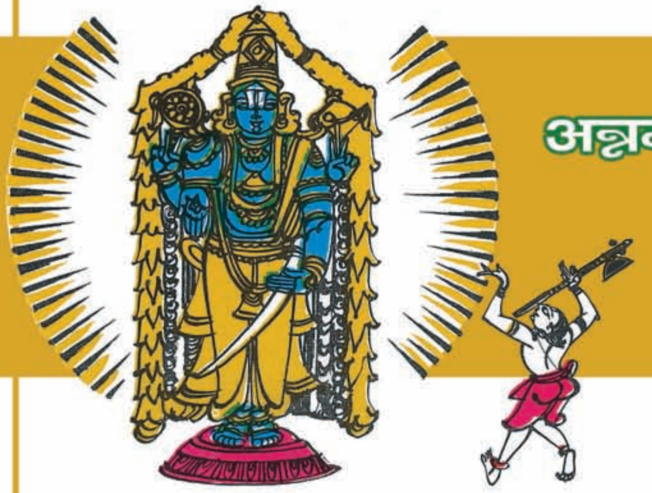

तेलुगु मूल - डॉ.एम.शिवप्रवीण

हिन्दी अनुवाद - श्रीमती पी.सुजाता
मोबाइल - ९४४१२५४०६१

अर्चकस्वामियों के प्रसादित तीर्थ-प्रसादों का सेवन कर, अपने आवास में गया था अन्नमय्या। उस रात उद्विग्न अन्नमय्या को नींद आयी कहाँ? नींद न आयी, तो आँखों-भर श्री वेंकटेश्वर का रूप भर कर सोता रहा। अगले उदय तिरुमल क्षेत्र में विलसित कुमारधारा, पसुपुधारा, अमरतीर्थ, आकाशगंगा, पापविनाशन तीर्थों के संदर्शनार्थ गया, उनमें तर कर स्नान किया तथा उन अमर, पावन तीर्थों की तृप्त सेवना की। इन तीर्थों में स्नान कर अन्नमय्या पुनः स्वामी के संदर्शनार्थ गाया, तो क्या हुआ कि उस विराट आलय बंद था। दोनों बृहत् कपाट बंद किये हुए थे, जिन पर भारी एक ताला लगा हुआ दर्शित हुआ। अन्नमय्या हताश हो गया। उसमें आशुकविता की सुरगंगा उमड पडी। वहीं मंदिर के प्रधान द्वार के सामने खडे होकर, आशु-रूप में एक भक्ति पूर्ण निदान का, अलमेलुमंगपति के ऊपर शतक बोल पडा। यों शतक की संरचना पूरी हुई ही कि नहीं, मंदिर के द्वार के बडे-बडे ताले अपने-आप टूट कर नीचे गिर पडे? तब के श्रीस्वामी के अर्चकस्वामी वहीं बैठा हुआ था, जिसने अन्नमय्या की आशु-अश्रुधार आद्यंत सुना था। वह तो बाल अन्नमय्या के प्रदर्शित यह सारा चमत्कार देख चुका था। उस अर्चकस्वामी को बाल अन्नमय्या पर काफी प्रेम, वात्सल्य उत्पन्न हो गया, क्योंकि अन्नमय्या के मुखडे का तेज कुछ इस प्रकार था, प्रभावोत्पादक! अर्चकस्वामी बाल अन्नमय्या को आदरपूर्ण मंदिर के अंदर ले गया था। वहाँ स्वर्णाभूषणों, मणिमकुटायमान अलंकारों से अलंकृत, भक्तों के आँचल के स्वर्ण श्रीवेंकटपतिमहराज का अन्नमय्या ने मनसा सेवित कर तृप्त हुआ।

''पोडगंटिमय्या मिम्मु... श्रीनिवासुडा''

ऐसे श्रीमन्नारायण का अन्नमय्या ने संदर्शन किया था। अर्चकस्वामी के आगमोक्त ढंग से करते हुए अर्चना विधान को देखते हुए अन्नमय्या ने अब से पहले कहे शतक को पुनः बताया। स्वामी ने करुणा दिखाई, जिसके निदर्शन के स्वरूप श्रीस्वामी की गर्दन पर अलंकृत मोतियों का हार टूट कर स्वामी के चरणों पर पडा। अर्चकस्वामी अचरज में डूब गया। यह बालक साधारण बालक नहीं। इसने तो श्रीनिवास परमात्मा के कृपा-कटाक्षों का पात्र बना हुआ है। पुजारी महोदय की इस आदर पूर्वक सराहना से वहाँ, स्वामी के मंदिर के अंतरालय में उपस्थित सभी लोगों ने उस विशेष प्रतिभावान बाल-अन्नमय्या की तरफ गौरवपुरस्सर-ढंग से देखा था। तब से हर रोज, अन्नमय्या, श्री बालाजी दर्शन करते हुए नारायण नाम के संकीर्तनों के गान करते हुए, तिरुवीथियों में विचरता रहा।

अन्नमय्या को वैष्णवयति-द्वारा पंच-संस्कार

भक्त-सुलभ उस भगवंत को इस बाल मधुर भक्ति-शिखामणि के गान-माधुर्य पर परवशित होना पड़ा।

एक दिन तिरुमल में रहनेवाले 'घनविष्णु' नामक वैष्णवयति को सप्तगिरियों के सम्राट् श्री वेंकटेश्वर ने सपने में साक्षात्कार देकर, ''ताल्लपाका अन्नमय्या मेरा भक्त है। बालक है। ब्रह्मचारी है। कर्णफूल धरे फिरता है। मेरे न पूछे, रेशमी गुच्छों से अलंकृत तानपूरा बजाते हुए मुझ पर गान संकीर्तन करते हुए, मोह रिझाता रहा है। कल तो हरे पास वह आयेगा, अनवसर कालयापना न किये, मेरे बदले तुम उसे शंख-चक्रांकित बनाओं।'' आज्ञापित कर, अंतर्ध्दान हो गया। सपने के आज्ञापन से झट जाग कर घनविष्णु, स्वामी की अनंत दया अथवा अपार कृपा को हजार बार सराहा और स्तोत्र किया।

इस आतुरता से कि स्वामी की आनति का पालन करना चाहिए, दूसरे दिन उदय नित्य कर्मों से शीघ्र निबट कर, हाथ में शंख और चक्रों की मुद्राएँ लिए दरवाजे पर आकर, अन्नमय्या के आगमन के लिए घनविष्णु महोदय राह देख रहा था। कुछ देर के

पश्चात् श्रीहरि के संकीर्त्तन गाते हुए घनविष्णु के निवास प्रांत में कदम रखा था अन्नमय्या ने। बहुत ही अपुरूप ढंग से उस बालक को देखा था घनविष्णु ने। सपने में स्वामी के द्वारा कहे गये लक्षण परखे। स्वामी के आदेशित महत्तर आज्ञा के पालन करते जाने पर खूब संतोषित हुआ। उस बालक को अपने पास बुलाया। नाम पूछा। उसने अपना नाम बताते हुए, उस मुनि का साष्टांग नमस्कार किया। क्या, रोशनी से उसे परिचय कराना है, जो गाढ अंधकार में तडपते रहा हो? भौरों को फूलों से कोई ज्ञात कराये? ज्ञानार्थी को कोई सद्गुरु से परिचय करायेगा? नहीं - ये सब परिचय उन-उन वर्गों को तो अपने आप हो जायेंगे।

अपने प्रति बालक के दिखाये गये भक्ति-प्रपत्तियों वाले गुण-गणों पर घनविष्णु महानुभाव फूले न समाया। 'मुनिनाथ ने उसे चूम्-पुचकार कर, अपने से तुम यह मुद्रा धारण, बिना झिझक कर लोगे!?' कह कर अन्नमय्या का अभिमत जान कर, सपने में रमापति के कहे ढंग से वेदोक्त प्रकार से घनविष्णु मुनि ने अन्नमय्या को चक्रांकित बना कर, वैष्णवधर्मी बनाया। इस प्रकार अन्नमय्या घनविष्णु नामक वैष्णवयति के द्वारा पंच-संस्कारवंत बना था।

ताल्लपाका को तिरोयान

वहाँ अपने पुत्र को खोये हुए नारायणसूरि, लक्कमांबाएँ गाँव-पूरा तलाश कर, इर्द-गिर्द के गावों में भी पूछ-ताछ कर निराश हुए। आखिरकार वे हताश दंपती तिरुमल गिरि पहुँच गये-इस आस से कि श्री वेंकटेश्वर ही अपने प्राणप्यारे पुत्र को वापस ला देगा, जिसने ही उसका प्रसादन अपने को दिया था। उन दंपतियों ने तिरुमल की तिरुवीथियों में स्वामी को संकीर्त्तनों से स्वरार्चना करते हुए फिरते अन्नमय्या को देखा। माँ ने अपनी संतान को देखकर फिघल कर अश्रुओं की नही बन पडी। घर आने पर काफी याचना की। अन्नमय्या ने

घर आने पर सख्त मना कर दिया। ना ही घर जाने की इच्छा प्रकट की। माँ का मन तडप उठा। बहुत बच्चे को झकझोरा। उस ममतामयी माँ की व्यथा न देखते हुए, अन्नमय्या को समझा बुझाया। उन्होंने कहा कि यहाँ के स्वामी तो अपने भी गाँव में भी है। फिर भी बालक अन्नमय्या टस-से-मस न हुआ। उनका एक न सुना।

उस दिन की रात को स्वामी श्री वेंकटेश्वर ने अन्नमय्या को सपने में साक्षात्कार दिया। ''तात! तुम्हारे वंश के लोग वेद, उपनिषदों के सार को दूसरों को बता देने वाली कुशलता पाये हुए थे। यह जान लो कि देह, देही (शरीर पाया हुआ) अलग हैं। अपनी दृष्टि में यह रखो कि समस्त प्राणी तेरे से समान हैं। तेरे समस्त भार, वजन, दायित्व मुझ पर डाल कर मेरी शरण में आजाओ। सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजा अंह त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। मैं तेरा कल्याण करता हूँ।'' कहते शिक्षा दे कर, ''कुमार! माँ की बात का निराकरण न कर, उसके साथ चलो, इसी में तेरी भलाई है।'' प्रबोधन किया। अन्नमय्या ने स्वप्नानंतर झट जाग कर, अपने माता-पितरों से भगवान के सुदीर्घ प्रबोधन की बात कही। उसने उस सपने को ही दैवाज्ञा मानकर, सुबह होते ही अपने माता-पितरों के संग अपना गाँव चला आया।

अन्नमय्या का विवाह

माता-पितरों के संग अपना गाँव पहुँचे अन्नमय्या हरि के संकीर्त्तनाओं के गायन से समय व्यतीत करता था। कुछ समय पश्चात् वह यौवन के प्रांगण में चला आया। लक्कमांबा-नारायणसूरि-दंपतियों ने अपने लाडले बेटे का विवाह करना चाहा। विवाह के प्रयत्न के हिस्से में उन दंपतियों ने वधू देने का आग्रह किया, जिन्हें यौवनवती कन्याएँ मौजूद थीं। लेकिन सब लडकीवालों ने उस कुमारक को अपनी लडकी देने पर राजी न हुए, जो हर हमेशा पर ध्यान में होते हुए गोविंदा, गोविंदा नाम जप करते हुए, गाने गानेवाला गोविंदनाम दासरी बन कर फिरता है। लक्कमांबा नारायणसूरि भगवान श्री वेंकटेश्वर के महा भक्त जो ठहरे, जिन्होंने अपने महाभक्त अन्नमय्या के विवाह का भार सब उस समस्त भार वाह श्री वेंकटेश्वर पर डाल दिया। अगले दिन की रात को उनके सपने में श्री वेंकटेश भगवान ने सपने में दिख कर, अपनी बेटी का ब्याह अपने प्रिय भक्त अन्नमय्या से कराने का आदेश दिया, जिन्होंने बेटी देने पर राजी न होते थे और ब्याह रचाने पर सख्त मना कर दिया था। वे लडकी वाले अगले दिन सुबह नारायणसूरि के घर आये। उन्होंने पिछले दिन की अपनी करनी और कही हुई बात पर विचार व्यक्त किया और अपनी एक नहीं, दो बेटियों- अक्कलम्मा, तिरुमलम्माओं का अन्नमय्या के साथ बडी धूम-धाम के साथ, जात के बड़ों के समक्ष में विवाह कर दिया।

क्रमशः

भगवद्गीता और नौजवान

संपन्नता के लिए शारीरिक तप

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवाँघ्रि सेवक दास

हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौराँग दास

मोबाइल - ९८२१९१४६४२

इस जगत में कुछ भी प्राप्त करने के लिए हमें तप के बल की आवश्यकता होती है, जिसे संस्कृत भाषा में ''तपोबलम्'' कहते हैं। पुराणों के कथनानुसार यहाँ तक कि असुरों ने भी असीमित शक्तियों द्वारा संपूर्ण जगत को अपने नियंत्रण में करने के लिए कठोर तपस्या की। वास्तव में इस सृष्टि के निर्माण के समय सुनाई पड़ने वाली पहली ध्वनि ''तप'' अर्थात् तपस्या ही थी। भगवान विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल के पुष्प पर जन्मे प्रथम व्यक्ति श्री ब्रह्म देव को दो बार ''तप'' शब्द की ध्वनि उस समय सुनाई पड़ी जब वे सोच में पड़े थे कि उनके प्रकट होने का उद्देश्य क्या है? उस तप शब्द की ध्वनि से प्रेरित होकर उन्होंने तपस्या करके सृष्टि के निर्माण के लिए आवश्यक महान शक्ति को प्राप्त किया। लेकिन मनुष्यों को असुरों की भांति कठोर तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है। वे जीवन में तपोबल के द्वारा सफलता प्राप्त करने के लिए भगवद्गीता में वर्णित तीन प्रकार के सरल एवं प्रभावी तपों का प्रयोग कर सकते हैं। अतः सभी मनुष्यों को और विशेषकर युवाओं को भगवद्गीता में बताये गये स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के उपदेशानुसार शरीर, मन एवं वाणी से संबंधित तीन प्रकार की तपस्याओं पर ध्यान देना चाहिए।

भगवद्गीता के मूल वक्ता भगवान श्रीकृष्ण ने इन तीन अनिवार्य तपों में से पहले शारीरिक तप का वर्णन किया। भगवद्गीता (१७.१४) के अनुसार ''परम भगवान, ब्राह्मणों, गुरु एवं माता-पिता जैसे गुरुजनों का पूजन करना तथा पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा ही शारीरिक तपस्या है।'' सभी सभ्य व्यक्तियों को यह शारीरिक तप नित्य करना चाहिए। कुछ नौजवान शारीरिक तप करते देखे जा सकते हैं। जैसे घरों में परीक्षा के समय युवाओं द्वारा भगवान एवं माता-पिता को प्रणाम करना व्यवहारिक ज्ञान के रूप में देखा जा सकता है। इसी प्रकार जन्मदिन या परीक्षा में उच्च श्रेणी प्राप्त करने जैसे अन्य अवसरों पर भी युवाओं द्वारा स्वाभाविक रूप से माता-पिता को प्रणाम करने का प्रचलन भी पाया जाता है। लेकिन गीता के उपदेशानुसार भगवान, ब्राह्मणों, गुरु एवं माता-पिता को नित्य रूप से प्रतिदिन प्रणाम

करना चाहिए। यह शारीरिक तप का एक भाग है। बच्चों का आदर भाव देखकर माता-पिता स्वाभाविक रूप से प्रसन्न होकर आशीर्वादों की वर्षा करते हैं। बड़ों को नित्य नमन करना वास्तव में वैदिक सभ्यता का अंश है। कम से कम एक महीने तक इस प्रक्रिया का पालन करने वाले व्यक्ति को निश्चित रूप से भगवद्गीता की शक्ति का अनुभव प्राप्त होगा। मंदिर में एक ब्राह्मण को प्रणाम करने से आशीर्वादों की ही प्राप्ति होती है।

इसके अतिरिक्त स्वच्छता एवं सरलता भी शारीरिक तप का ही अंश हैं। स्वच्छता का अर्थ किसी व्यक्ति का बाह्य एवं आन्तरिक दोनों रूपों से स्वच्छ होना है। नेत्रों द्वारा केवल बाहरी स्वच्छता को देखा जा सकता है किन्तु आंतरिक स्वच्छता व्यवहार एवं शब्दों द्वारा प्रदार्शित होती है। अर्थात् हमारे शब्द एवं कार्य हमारी आंतरिक स्वच्छता दर्शाते हैं। प्रतिदिन दो बार स्नान करना बाह्य स्वच्छता का उदाहरण है, जबकि प्रतिदिन कम से कम ३० मिनट तक भगवान के पवित्र नामों का जप करना आन्तरिक स्वच्छता से संबंधित है। ग्रंथों में विभिन्न स्थानों पर दिये वर्णनों से प्रकट होता है कि भगवान के पवित्र नामों का ध्यान करने से हृदय-पटल पर जमी हुई धूल निश्चित रूप से साफ हो जाती है। स्वभाव में विनम्रता एवं कोमलता को ही सरलता कहते हैं। यह जीवन शैली पर भी लागू होता है। अत्यधिक व्यय के बिना जीवन व्यतीत करना भी सरलता का उदाहरण है। यह सतोगुण का प्रभाव है। ब्रह्मचर्य भी शारीरिक तपस्या का भाग है। आजकल अनेकों व्यक्ति किसी न किसी धर्म का पालन के लिए तपस्या करते पाये जाते हैं। ब्रह्मचर्य सभी तपस्याओं का अनिवार्य हिस्सा है। युवाओं को इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण को प्राप्त करने का अभ्यास करना चाहिए। गीता के उपदेशों में इसे अत्यंत महत्वपूर्ण बताया गया है और अनेक संत पुरुष भी यह उपदेश देते हैं। कठोरता से ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले युवा शांत एवं निर्मल हृदय के हो जाते हैं। शारीरिक तप का अगला भाग अहिंसा है। माँसाहार से बचना अहिंसा का उदाहरण है। शाकाहारी भोजन से मन स्वच्छ एवं शुद्ध हो जाता है और शरीर स्वस्थ रहता है। यह वास्तव में शारीरिक तप का ही अंश है। इस प्रकार शारीरिक तप के विभिन्न भागों का पालन करने वाले व्यक्तियों और विशेषतः युवाओं को जीवन के वांचित फलों को प्राप्त करने की शक्ति मिल जाती है। कोई भी इस तथ्य का सीधा परीक्षण कर सकता है। कोई भी व्यक्ति व्यवहारिक रूप से अपने स्पष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्धारित किये गये कार्यों की सूची का लेखा बनाकर ३० दिनों तक शारीरिक तप के सभी अंगों का पालन करने का व्रत ले सकता है। ऐसा करने वाले व्यक्ति को प्रायोगिक अभ्यास के द्वारा भगवद्गीता की शक्ति का अनुभव निश्चित रूप से प्राप्त होगा। एसे सभी जिज्ञासु युवाओं के लिए शुभकामनाएँ!

श्री वेंकटेश्वर परब्रह्मणे नमः

हिन्दू होने के नाते गर्व कीजिए!

* ललाट पर अपने इच्छानुसार (चंदन, भस्म, नामम्, कुंकुम) तिलक का धारण करें।
* नहाने के बाद निम्न भगवन्नामों में से किसी एक का एक पर्याय में १०८ बार जप करें।

श्री वेंकटेशाय नमः।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो नारायणाय।

श्री प्रपन्नामृतम्

(१४वाँ अध्याय)

मूल लेखक - श्री स्वामी रामनारायणाचार्यजी

प्रेषक - श्री रघुनाथदास रान्दड

मोबाइल - ९९००९२६७७३

(गतांक से)

विशिष्टाद्वैत दर्शन के आधारभूर तत्त्वों में प्रमाण

कांचीपुरी के पूर्वभाग में वर्तमान ''पुरुष-मंगल'' ग्राम के वेदज्ञ एवं धर्म के तत्त्वों को जानने वाले विप्रवर्य अनंत दीक्षित के साथ ब्याही गयी, उत्तमा स्त्री के सभी लक्षणों एवं गुणों से युक्त स्वामी केशवाचार्यजी की, पुत्री के गर्भ से भरतजी के अंश से अवतीर्ण सकल जगत् विख्यात दाशरथी स्वामी का प्रादुर्भाव हुआ था। इन्होंने जब सुना कि हमारे मामा ने सन्यास ग्रहण कर लिया है तो शीघ्र ही कांचीपुर आकर यतिश्रेष्ठ रामानुजाचार्यजी से समाश्रित हो गये। तदनंतर हारीत गोत्रोद्भूत अनन्तभट्ट के पुत्र भगवद्भक्तिपरायण सभी शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले श्रीकूरनाथ मुनि ने भी यतिवर रामानुजाचार्यजी द्वारा भगवत् शरणागति प्राप्त की। यतिपुंगव रामानुजाचार्यजी अपने इन दोनों शिष्यों को श्रीवैष्णव सिद्धांत के ग्रन्थों का उपदेश प्रदान करते हुए, कांचीपुरी में रहने लगे। एक समय पं० यादवाचार्य की माता ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी, काषाय वस्त्र पहिने हुये, त्रिदण्डधारी श्रीनारायण मुनि की ही तरह भव्य विग्रह वाले यतिश्रेष्ठ श्रीरामानुजाचार्य को अपने उपर्युक्त दोनों शिष्यों को वैष्णव-ग्रन्थों का उपदेश करते हुए देख कर प्रेमपूर्वक प्रमाण करके अपने मंदिर में जाकर यादवप्रकाशाचार्य से बोली- ''पुत्र यादव! अब तुम पहले की तरह रामानुजाचार्यजी से बैर न करो और जाकर उनसे शरणागति ग्रहण करो। धर्म-संस्थापन के लिए भगवान ने उन्हीं के रूप में श्रीशेष को मर्त्यलोक में भेजा है। वे ही केशवाचार्य के पुत्र रूप में श्रीरामानुजाचार्य के नाम से अवतरित होकर सभी प्राणियों के हित में संलग्न हैं।'' ऐसा उन्हें कांचीपूर्ण स्वामी आदि सभी ज्ञानी लोग मानते हैं। और पुत्र! विष्णुभक्ति-विहीन विद्वद्वरेण्य ब्राह्मण की विद्या शव के अलंकार की तरह बेकार हैं। तत्त्वज्ञ पराशर आदि मुनि यह जानकर कि श्री महाविष्णु ही इस सृष्टि के उद्भव, पालन एवं संहार (रूप मोक्ष) के कर्त्ता हैं व नारायण की शरण में जाकर मुक्त हो गये। माता की वाणी सुनकर यादवप्रकाशाचार्य बोले- ''माताजी! आपको कहना मेरे लिए हितकर है किन्तु इसके लिए पहले मुझे पृथ्वी की प्रदक्षिणा करनी होगी और वृद्धावस्था के चलते अब मैं पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने में अक्षम हूँ।'' यादवप्रकाशाचार्य की वाणी सुनकर उनकी माता बोली- ''तुम जाकर यतिश्रेष्ठ श्रीरामानुजाचार्य की प्रदक्षिणा

कर लो, इसी से तुम्हें पृथ्वी की परिक्रमा के फल की प्राप्ति हो जायेगी।'' माता की वाणी के विषय में पं० यादवप्रकाशाचार्य उस दिन कुछ निश्चय न कर सके। संशयग्रस्त यादवप्रकाशाचार्य एक दिन भगवान रामानुजाचार्यजी के मंदिर में आकर बोले- ''तुमने अप्रामाणिक ढंग से शंख-चक्र धारण करके ऊर्ध्वपुण्ड्र लगा लिया है तथा निर्गुण ब्रह्म को सगुण प्रतिपादित किया है।'' किन्तु उसमें कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं हैं यदि हो तो बतलाओ। यादवप्रकाश की उपर्युक्त वाणी सुनकर श्रीरामानुजाचार्य ने अपने शिष्य कुरेश मुनि को उत्तर देने के लिये आदेश दिया। तदनंतर श्रीकुरेशाचार्य यादवप्रकाशाचार्य से बोले- ''सुनिये, मैं शंख-चक्र-काषाय धारण करने में श्रुति-स्मृति एवं पौराणिक वचनों को उद्धृत करता हूँ।'' श्रुति का प्रमाण है-

प्रतप्ते विष्णोरब्जचक्रे पवित्रे जन्माम्भोधितर्तवे चर्षणीन्द्राः मूले बाहोर्दधतेन्ये पुराणा लिंगान्यंगे तावकान्यर्पयन्ति।।

अर्थात्-जन्म-मरणरूपी संसार-सागर को पार करने की इच्छा से भगवद्भक्त भगवत्शरणागति करके अपने भुज मूल में अग्नि संतप्त शंख-चक्र (का चिह्न) धारण करते हैं। सामवेद की श्रुति है-

पवित्रमित्यग्निः। अग्निसर्वेसहस्रारः। सहस्रारो नेमिः। नेमिना तप्ततनुर्ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति देवासो सो विधृतेन बाहुना सुदर्शनेन प्रयतमानवो लोकसृष्टिं वितन्वन्ति ब्राह्मणास्तद्वदन्ति अग्निना वैतप्तं द्विभुजे धार्यम्। ऊर्ध्वपुण्ड्रमालिखेत्।। ''तस्माद्विरेखं भवति न पुनरागमनमेति ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति। चक्रं विभर्ति वपुषा प्रतप्तं बलं देवानाममितस्य विष्णोः स एति नाकं दुरितान् विधूय प्रयान्ति यद्यतयो वीतरागाः''।।

अर्थात्-अग्नि को पवित्र एवं सहस्रार कहते हैं। चक्र का नाम भी सहस्रार ही है। अतः चक्र सन्तप्त तनु ब्राह्मण भगवान की सायुज्यता और सालोक्यता को प्राप्त करते हैं। अतः मुमुक्षु को चाहिये कि वह दोनों भुजमूलों में शंख, चक्र चिह्नों को तथा ललाट में ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करे। ऐसा करने वाला ब्राह्मण आवागमन के बंधन से मुक्ति पा जाता है। देवाधिदेव विष्णु का चक्र अमित बलशाली है, इसे धारण करने वाले ब्राह्मण अपने समस्त पापों को नष्ट करके वीतरागयतियों को प्राप्य वैकुण्ठलोक को प्राप्त करते हैं। अथर्वणवेद में लिखा हुआ है किः-

एभिर्वयमुरुक्रमस्य चिह्नैरंकिता लोके सुभगा भवामः।
तद्विष्णोः परमं पदं येऽधिगच्छन्ति लांछिताः।।

भगवान विष्णु के चिह्नों से अंकित मनुष्य सांसारिक ऐश्वर्यों का विस्तृत भोग करके अन्त में वैकुण्ठलोक को जाते है। पराशर संहिता में लिखा है कि-

उपवीतादिवद्धार्याः शंखचक्रादयस्तथा।
ब्राह्मणस्य विशेषेण वैष्णवस्य विशेषतः।।

अर्थात्-खासकर ब्राह्मण वैष्णव को तो शंख, चक्र चिह्नों को यज्ञोपवीत की तरह सदा धारण करना चाहिये। भीष्म-पर्व नामक ग्रन्थ का प्रमाण है कि-

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चकृतलक्षणैः।
वन्दनीयश्च बन्द्यश्च नित्ययुक्तैः स्वकर्मसु।।

अर्थात्-चारों वर्णों के लोगों द्वारा शंख, चक्र लांछित वैष्णव वन्दनीय एवं पूज्य होते हैं। हारीत स्मृति का वचन है किः-

तापादिपंचसंस्कारी महाभागवतोत्तमः।
अन्ये त्ववैष्णवा ज्ञेया हीनास्तापादिभिर्जनाः।।
विना यज्ञोपवीतेन विना चक्रस्य धारणात्।
विना द्वयेन वै विप्रश्चाण्डालत्वमवाप्नुयात्।।

ताप पुण्ड्रादि पंचसंस्कारवान् ही महाभागवत कहलाते है और पंचसंस्कार विहीनों को ही अवैष्णव माना जाता है। यज्ञोपवीत पंचसंस्कार के बिना तो विप्र भी उसी श्रेणी के अंदर ही गिना जाता है। वामनपुराण का प्रमाण है कि-

श्वपाकमिव वीक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम्।
वैष्णवो वर्णबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम्।।

वर्णविहीन वैष्णव भी तीनों लोकों को पवित्र कर देता है। लिंग पुराण में भी लिखा है किः-

अष्टाक्षरविदः सर्वे तप्तचक्रांकितास्सदा।
सेवकाः वासुदेवस्य तथैव नटनर्त्तकाः।।

अष्टाक्षर मंत्र को जानने वाले तप्तचक्रांकित जीव रंगस्थ नट एवं नर्त्तक की भाँति श्रीवासुदेव के सेवक ही हैं। अब आप ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण में निम्न प्रमाणों पर ध्यान दें। कठवल्ली की श्रुति है किः-

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः कृतचक्रधारी, विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा।
स्वरेण मंत्रेण सदा हृदिस्थं परात्परं यं महतो महांतम्।।

शंख-चक्रधारी ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किये हुए जो महात्मा परात्पर श्रीनारायण का हृदय में ध्यान करते हुए मूलमंत्र का उच्चारण करते हैं, वे सर्वोत्कृष्ट हैं। स्कंदपुराण में लिखा है किः-

येषां चक्रांकितं गात्रं शुद्रेष्वपि च दृश्यते।
ते वै स्वर्गस्य नेतारो ब्राह्मणाः भुवि दुर्लभाः।।

अर्थात् शंख-चक्रांकित शूद्र भी स्वर्गलोक में नेता होते हैं, ऐसे ब्राह्मण वैष्णव तो भूमण्डल में दुर्लभ हैं। अथर्वणोपनिषद् में लिखा है किः-

हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्ये छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रम्।
यो धारयति सः परस्य प्रियो भवति, पुण्यवान् भवति,
मुक्तिवान् भवति।।

अर्थात्-भगवच्चरणारविन्दों की आकृति वाले ऊर्ध्वपुण्ड्र को ललाट में उज्जीवनार्थ धारण वाले व्यक्ति भगवान विष्णु के प्रिय प्रेमपात्र बनकर मुक्ति एवं अक्षय पुण्य के भागी बनते महोपनिषद् केः-

धृतोद्र्ध्वपुण्ड्रं परमेशितारं नारायणं सांख्ययोगाभिगम्यम्।
ज्ञात्वा विमुच्येत नरः समस्तैः संसारपाशैरिह चेति विष्णुम्।।

इस वाक्य से प्रमाणित होता है कि- ''ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी सांख्य योग द्वारा जानने योग्य भगवान नारायण को जानकर सांसारिक जन्म-मरणादिक बन्धनों को तोड़कर वैकुण्ठलोक में निवास करते हैं। ''ब्रह्माण्ड पुराण में भिन्न-भिन्न वर्णों के लिए धार्य पुण्ड्रों का विधान करते हुए लिखा गया है कि -

ब्राह्मणस्योद्र्ध्वपुण्ड्रं तु क्षत्रियस्यार्धचन्द्रकम्।
वैश्यस्य वर्तुलाकारं शुद्रस्यैव त्रिपुण्ड्रकम्।।

अर्थात्-ब्राह्मण के लिए ऊर्ध्वपुण्ड्र, क्षत्रिय के लिए अर्द्ध चन्द्रकार पुण्ड्र, वैश्य के लिए वर्तुलाकार पुण्ड्र एवं शूद्र के लिए त्रिपुण्ड्र का विधान है। साथ ही बह्माण्ड पुराण में श्रुत्या ब्राह्मण के लिए त्रिपुण्ड्र के निषेध में निम्न प्रमाण हैं-

ब्राह्मणेन क कर्त्तव्यं तिर्यक्पुण्ड्रस्य धारणम्।
स शुद्र एव मन्तव्यस्तिर्यकपुण्ड्रस्य धारणात्।।

अर्थात् ब्राह्मण कदापि त्रिपुण्ड्र धारण न करें। त्रिपुण्ड्रधारी को शूद्र समझना चाहिये। अग्नि पुराण में तो ब्राह्मण के लिए त्रिपुण्ड्र का निषेध और ऊर्ध्वपुण्ड्र का विधान है।

क्रमशः

श्री चामुंडेश्वरीदेवी

- डॉ.एस.पी.वरलक्ष्मी
दूरभाष - ०८६४४२२८०८५

सज्जनों की रक्षा करने केलिए दुर्जनों को दंड देने केलिए शक्तिरूपिणी दुर्गा, काली, महिषासुर मर्दिनी, चांमुडेश्वरी कई रूपों में पूजा लेती हैं।

कर्नाटक प्रांत के मैसूर समीप चामुंडेश्वरी गिरि शिखर पर आदिपराशक्ति चांमुडेश्वरी के रूप में अवतरित हुई। मैसूर महाराजा की कुलदेवता भक्त जन के प्रति वह जगन्माता प्रकाशित हो रही है।

ईश्वरजी के रुद्रतांडव में सतीदेवी के एक-एक शरीर भाग एक-एक प्रदेश में गिरे। उस प्रकार अठारह प्रदेश अष्टादश शक्तिपीठों के रूप में प्रकाशित हैं। उनमें से चौथे मैसूर में स्थित चामुंडेश्वरी देवी का मंदिर है। वह महिषासुर संहार केलिए अवतरित शक्ति स्वरूपिणी, उस पहाड पर स्थिर निवास रखकर चांमुडेश्वरी के रूप में मशहूर है।

स्थल पुराण

पुराने जमाने में महिषासुर नामक राक्षस ने परमेश्वरजी केलिए तप किया था। उसकी भक्ति केलिए भगवान ने अनुग्रह दिया कि तुम्हें क्या वर चाहिये? माँगो। सत्वर महिषासुर ने माँगा कि पुरुषों के हाथ में मरण नहीं होना चाहिये मुझे। वर पाने के गर्व से वह बेबस एवं स्त्रियों को सताने लगा। इंद्र से जीत कर स्वर्गाधिपत्य को चलाते हुए बाकी देवताओं को भी पीडा करता था। इस हिंसा से भयभीत होकर सारे देवताओं ने त्रिमूर्तियों से प्रार्थना करने पर तीनों मिलकर एक शक्ति स्वरूपिणी का सृष्टि कर चुके, वही शक्ति अठारह हाथों से चांमुडेश्वरी के रूप में दर्शन देती है। सर्व प्रथम चंड-मुंड दो राक्षसों के संहार के बाद महिषासुर का वध करके महिषासुर मर्दिनी के रूप में पूजा लेती है। ''पौराणिक वाणी हैं कि सतीदेवी के शिरोज यहाँ गिरे, उसी कारण से यह मंदिर अष्टादश शक्तिपीठों में एक होकर प्रकाशित होती है।''

मंदिर की प्रगति

समुद्र पर करीब तीन हजार पांच सौ किलो मीटर के ऊपर चामुंडेश्वरी गिरि पर यह शक्तिपीठ विराजित है। जनवाणी है कि इस क्षेत्र को १२वीं सदी में होयसाल पालकों ने निर्माण किया था। तत्पश्चात् यह प्रांत क्रौंच नगर के रूप में महिषासुर मंडल के रूप में मशहूर हुआ

है। इसी कारण से चामुंडेश्वरी मंदिर को क्रौंच पीठ भी पुकारते हैं। मैसूर राजा वड़यार ने इस मंदिर की श्रीवृद्धि की। सात मंजिलों में इस मंदिर के गोपुर को निर्मित किया था। हर गोपुर से माता चामुंडेश्वरी का दर्शन होता है। यह एक विशेषता है।

बडा नंदी

देश में ही अत्यंत बडे नंदियों में इस नंदी मूर्ती को तीसरा स्थान है। माता चामुंडेश्वरी के मंदिर मार्ग में शिवालय में यह नंदी विग्रह दर्शन देता है। १५ फुट, २४ फुट लंबाई, चौडाई से यह काले पत्थर की मूर्ती अत्यंत आकर्षणीय है। यह विशिष्ट चित्र कलाकृति है। यह मूर्ति अत्यंत रमणीय है।

दशहरे के उत्सव

चामुंडेश्वरी क्षेत्र में दशहरे का उत्सव अत्यंत वैभव से निर्वाह करते हैं। मैसूर राजाओं की कुल देवता पूजा लेनेवाली चामुंडेश्वरी देवी केलिए मुसल्मान लोग आभरण समर्पित करते हैं। यह उनकी देवी भक्ति का महान उदाहरण है। सन् १९६१-८२ बीच समय में मैसूर का मुसल्मान शासक हैदर आली चामुंडेश्वरी के लिए स्वर्णाभरण एवं वस्त्र समर्पित कर चुके। इसी संप्रदाय के अनुसार उसका पुत्र टिप्पू सुल्तान ने भी इस नियम का पालन किया। नवरात्रियों में किसी न किसी एक दिन चामुंडेश्वरी मंदिर

में विविध-राजाओं से समर्पित स्वर्णाभरण लाते हैं। रात में बारह बजे तक सर्वाभरणों से चामुंडेश्वरी को सजाते हैं। दशहरे के उपरांत उन सभी गहनों को खजाने को भेज देते हैं। रिवाज के अनुजार मैसूर राजवंशी श्रीकंठ दत्त नरसिंहराज उडयार अपने पास रखकर दशहरे त्योहार के संदर्भ में मंदिर में समर्पित करता है। दशहरे के पवित्र दिनों में बडे तादाद में भक्त चामुंडेश्वरी देवी का दर्शन करने पहुँचते हैं।

मंदिर जाने का मार्ग

चामुंडेश्वरी देवी की दर्शन के लिए रेल, सडक, वायुमार्ग सभी उपलब्ध हैं। बेंगलूरु, हैदराबाद, तिरुपित, चेन्नै, मंगलूर अन्य नगरों से मैसूर जाने सरकार एवं गैरसरकारी के बस बडी संख्या में घूमते रहते हैं। रेल में आनेवाले मुसाफिर मैसूर रेल्वे स्टेशन में उतरकर वहाँ से सडक मार्ग में यात्रा करके चामुंडेश्वरी माँ का दर्शन कर सकते हैं। गगन मार्ग में देश के चारों ओर मैसूर को हवाई जहाज का इंतजाम है हवाई अड्डे से आटोरिक्षाओं में मंदिर पहुँचने की सुविधा है।

सर्वमंगलस्वरूपिणी, सर्वाभीष्ट प्रदायनी चामुंडेश्वरी देवी को जय हो!

गतांक से

श्री रामानुज नूट्रन्दादि

मूल - श्रीरंगामृत कवि विरचित

प्रेषक - श्री श्रीराम मालपाणी
मोबाइल - ९४०३७२७९२७

**आनदु शैम्मै यरनेरि, पोय्म्मै यरुसमयम्
पोनदु पोन्नि इरन्ददु वेंकलि, पूंकमल -
त्तेनदि पाय्वयल् तेन्नरंगन् कळल् शेन्निवैत्तु
तानदिल मन्नुम्, इरामानुज नित्तलत्तुदित्ते ॥४९॥**

कमलकुसुमनिर्यन्मधुप्रवाहपूर्ण के दारपरिवेष्टित श्रीरंगक्षेत्रपतेर्भगवतः पादारविन्दमवतंसयतस्तत्प्रावण्यैकनिरूपणीयस्य च श्रीरामानुजस्य भूमाविहावतरणेन ऋज्वी धार्मिकसरणिः प्रतिष्ठां लेभे; असदर्थप्रतिपादकानि षड्दर्शनानि विलिल्यिरे; परुषः कलिपुरुषश्च प्रणनाश।

कमलपुष्पों से बहनेवाले मधु के प्रवाह से परिपूर्ण खेतों से परिवृत श्रीरंगक्षेत्र के स्वामी श्रीरंगनाथ भगवान के श्रीचरणों को अपने सिर पर धारण करते हुए, उन पर ही भक्ति करनेवाले श्रीरामानुज स्वामीजी के इस धरातल पर अवतरित होने से, सीधा धर्ममार्ग प्रतिष्ठित हुआ; असत्यार्थ का वर्णन करनेवाले ६ मत नष्ट हो गये और क्रूर कलियुगने भी विनाश पाया।

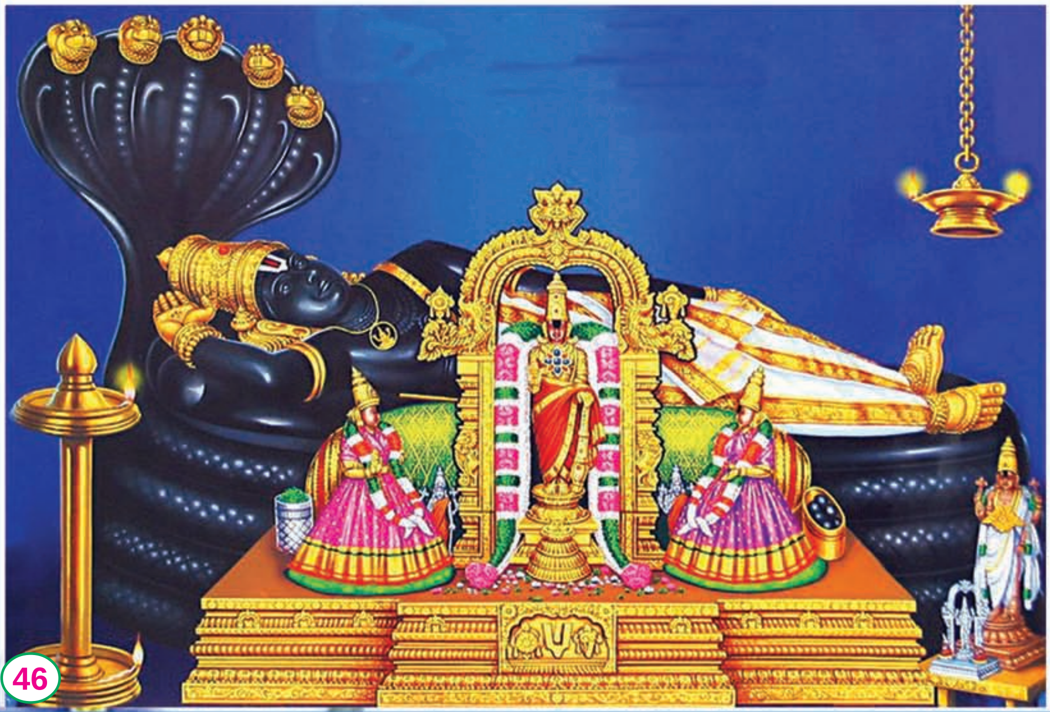

श्रीरामानुज स्वामीजी के अवतार से असत्यार्थ का वर्णन करनेवाले छः मत नष्ट हो गये और क्रूर कलियुगने भी विनाश पाया।

क्रमशः

(गतांक से)

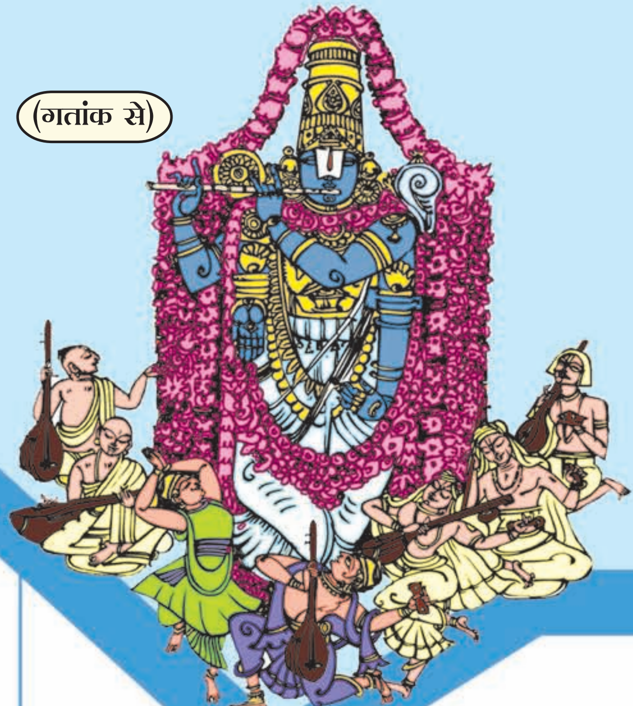

हरिदास वाङ्मय में श्रीवेंकटाचलाधीश

तेलुगु मूल - श्री एस.नागराजाचार्युलु

हिन्दी अनुवाद - डॉ.एम.आर.राजेश्वरी
मोबाइल - ९४९०९२४६१८

दास्यभक्ति-कीर्तन भक्ति

श्रीमद्भागवतोक्ति है कि भगवान के कटाक्ष प्राप्त करने के लिए युगभेदानुसार कृतयुग में तपस्या, त्रेतायुग में यज्ञ व याग, द्वापर में व्रत एवं अर्चना करना पड़ता है। कलियुग में केवल संकीर्तन यानी भगवान के कीर्तिवाचन से उपर्युक्त तीनों युगों के सत्कर्मानुष्ठान फल एवं भगवान का अनुग्रह प्राप्त होता है।

''ध्यायन् कृते यजन् यज्ञे। त्रेतायाम् द्वापरेर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति। कलौ संकीर्त्यकेशवम्।।''

''कृतेतु ध्यायतो विष्णोः। त्रेतायां यजतोमखैः।
द्वापरे परिचर्याभिः कलौकेशव कीर्तनात्।।''

उपर्युक्त श्लोकों के भावार्थ का प्रस्तुतीकरण, श्रीपादराय के शब्दों में –

''ध्यानवु कृतयुगदि। यजन यज्ञपु त्रेतायुगदि
दानवांतकन देवतार्चनेयु द्वापरयुगदि- आ
मानवरिगेष्टु फलवो अष्टुफलवु - ई कलियुगदि
गानदि केशव येनलु कैकोड्डुवरंगविठल।''

संभव है कि इसी कारणवश, युगधर्मानुसारेण हिरण्यकशिपु ने तपस्या, दशरथ ने यज्ञ, गोपबालिकाओं ने व्रत का आचरण किया। कलियुग में भक्तिपूर्वक अगर भगवान के कीर्ति की स्तुति करेंगे, संकीर्तन प्रस्तुत करेंगे (कीर्तन या गाना प्रस्तुत करना), तो पर्याप्त है। इसकी फलश्रुति श्रीमद्भागवत् में प्रस्तुत है, यथा -

''येतावताल मघ निर्हरणायपुंसां।
संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नां।
विक्रुस्यपुत्रमघवान्यद जामिलोपि।
नारायणेति म्रियमाण इयायमुक्तिम्।।''

''प्रायेण वेदतदिदं नमहाजनोयम्।
देव्या विमोहित मतिर्बतमाय यालम्।
त्रय्यां जड़ी कृतमतिर्मधु पुष्पितायम्।
वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः।।''

कलियुग में पाप से त्राण पाने के लिए, नरक से च्युत होने के लिए केवल भगवान का गुणगान करना श्रेष्ठ उपाय माना जाता है। इसका 'अजामिल' ही साक्षी बनता है। यहाँ यमधर्मराज के चिन्तन व अभिप्राय को बताना आवश्यक है। उनके अनुसार, कलियुग के मोक्षार्थी को भक्ति के साथ भगवान का नामसंकीर्तन करना पर्याप्त है, उसको अगर वेदों के सार को जानकारी की आवश्यकता नहीं है। ना ही उसे स्वर्ग की कामना हेतु भागवत् धर्माचरण की सटीक जानकारी चाहिए, ना ही उसको याग-यज्ञ करने की आवश्यकता है। उसको इतना पता चले कि *''नामसंकीर्तना द्विष्णोः दह्यते बहु पातकाः''*, तो काफी है। नामसंकीर्तन करने से उसके पापों का पहाड, ढह जाएगा। यमधर्मराज, अपने दूतों से यह भी कहते हैं कि जो भक्त अपने भगवान की स्तुति भक्तिपूर्वक, निरंतर,

गंभीर रूप से करता है, उसको मेरे द्वारा दिये जानेवाले दण्ड़ से भय खाने की आवश्यकता नहीं होगी -

''सर्वात्मना विदधखेखलु भावयोगम्।
तेमेन दण्डवर्हयत्यथ यद्यमीषाम्।।''

कुंती देवी ने भी अपना अभिप्राय ऐसा प्रस्तुत किया- 'जो भक्त श्रीहरि की महिमाओं का वर्णन करता है, जो उसे सुनकर मनोविकारों से दूर होकर आनंद का रसास्वादन करता है। उसके परिणाम स्वरूप भगवान की सेवा में लग जाता है, वह निश्चित रूप से इस भवसागर को आसानी से पार कर जाता है।'

''भवप्रवाहो परमं पदाम्बुजम्''

भगवान का नामसंकीर्तन करने तथा सुनने पर मनोविकार सारे नष्ट हो जाते हैं तथा मन में शांति का प्रसार होता है। जिस भांति सूर्योदय के साथ अंधकार दूर होता है, वायु के चलने पर काले घन हट जाते हैं, उसी भांति पाप तथा अज्ञान दूर होकर मन में शांति पैठती है। संकीर्तन से जो फल मिलते हैं, उनकी सूची तो अनगिनत हैं, कुछ यहाँ प्रस्तुत भी हैं। *'संकीर्त्यमानो भगवाननंतः ... थथातमोर्कोभ्रम वातिवातः।''* श्रीमध्वाचार्य ने भी यही कहा कि जिस भांति आग के स्पर्श से लोहा पिघल जाता है, उसी भांति हरिनाम संकीर्तन करने से सारे पापों की विनष्टि होती है। श्रीव्यासरायजी की वाणी को, मध्वाचार्यजी के सिद्धांत व संप्रदाय को, हरिदासों ने द्रविड़ भाषा में, पद्य-गद्य-चंपू काव्य में साहित्य की रचना होने के बावजूद *'सद्यः फलति संगीतम्'* को मान्यता देकर संगीत या गेय, वाद्य तथा नृत्य के अनुकूल संगीतात्मक शैली में भगवान की स्तुति की। इसके साथ-साथ भांति-भांति के तात्विक चिंतन पर आधारित विषय प्रधान संकीर्तनों की रचना मनोरंजक शैली में राग-ताल-नृत्य के अनुकूल भक्ति, अनुराग-विराग, आध्यात्मिक भावसंपन्न, प्रभु तथा मित्रकांता सम्मिलित नारिकेल-कदलि-द्राक्षापाक की भांति श्रोता व गायकों के लिए स्तरीय एवं अनुकूल वाङ्मय की रचना की।

''कीर्तिसि जनरेल्ल हरिय गुण। कीर्तिसि जनरुकृतार्थ रागिरो।''

श्रीव्यासरायजी ने श्रीहरि के गुणगान की महत्ता को प्रकट करते हुए सारी प्रजा से यह कहा कि जिस प्रकार हरिनाम का यशोगान करके वाल्मीकि, शबरी तथा अहल्या पुनीत हुए, उसी भांति आप भी गुणगान करके अपना उद्धार कर लीजिए।

क्रमशः

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

लेखक लेखिकाओं से निवेदन

सप्तगिरि पत्रिका में प्रकाशन के लिए लेख, कविता, रचनाओं को भेजनेवाले महोदय निम्नलिखित विषयों पर ध्यान दें।

१. लेख, कविता, रचना, अध्यात्म, दैव मंदिर, भक्ति साहित्य विषयों से संबंधित हों।

२. कागज के एक ही ओर लिखना होगा। अक्षरों को स्पष्ट व साफ लिखिए या टैप करके मूलप्रति डाक या ई-मेइल (HINDISUBEDITOR@GMAIL.COM) से भेजें।

३. किसी विशिष्ट त्यौहार से संबंधित रचनायें प्रकाशन के लिए ३ महीने के पहले ही हमारे कार्यालय में पहुँचा दें।

४. रचना के साथ लेखक धृवीकरण पत्र भी भेजना जरूरी है। 'यह रचना मौलिक है तथा किसी अन्य पत्रिका में मुद्रित नहीं है।'

५. रचनाओं को मुद्रित करने का अंतिम निर्णय प्रधान संपादक कार्य होगा। इसके बारे में कोई उत्तर प्रत्युत्तर नहीं किया जा सकता है।

६. मुद्रित रचना के लिए परिश्रमिक (Remuneration) भेजा जाता है। इसके लिए लेखक-लेखिकाएँ अपना बैंक प्रथम पृष्ठ जिराक्स (Bank name, Account number, IFSC Code) रचना के साथ जोड करके भेजना अनिवार्य है।

७. धारावाहिक लेखों (Serial article) का भी प्रकाशन किया जाता है। अपनी रचनाओं का भेजनेवाला पता-

प्रधान संपादक,
सप्तगिरि कार्यालय,
ति.ति.दे.प्रेस कांपौन्ड, के.टी.रोड,
तिरुपति – ५१७ ५०७. चित्तूर जिला।

तुलसी का माहात्म्य

धार्मिक-आध्यात्मिक-वैज्ञानिक महत्व

- श्री ज्योतीन्द्र के. अजवालिया
मोबाइल - ९८२५११३६३६

हमारी भारतीय संस्कृति ने सजीव-निर्जीव प्राणी वनस्पति सभी को मान सम्मान दिया गया है आज हम यहाँ तुलसी के बारे में विशेष जानकारी हासिल करने जा रहे हैं। सभी मंदिरों में तुलसीदल का जल तीर्थ के रूप में दिया जाता है, क्यों?

आजकल ''कोरोना वायरस महाम्मारी'' के संदर्भ में भी मंदिरों में तुलसी जल दिया जाता हैं, क्यों? ये सभी प्रश्नों का उत्तर इस लेख में मिलेगा।

इन दिनों कोरोना वायरस को लेकर अलग-अलग बाते सामने आ रही है। सोशल मीडिया में बात तुलसी को लेकर भी हो रही है। अपने आध्यात्मिक एवं भौतिक गुणों के कारण हमारे यहाँ तुलसी के पौधे को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसे धार्मिक आस्थाओं से जोड़ कर भारतीय जीवन-पद्धति का अभिन्न अंग माना गया है। घर में तुलसी का पौधा लगाना, उसकी पूजा करना, नित्य मन्दिर में चरणामृत के साथ दोनों समय भोजन के साथ भगवान के प्रसाद के रूप में तुलसी पत्र लेना, हमारे दैनिक जीवन में तुलसी के उपयोग और उसके महत्व का परिचायक है। इतना ही नहीं एक ग्रामीण से लेकर शहर का शिक्षित व्यक्ति भी अनेक बीमारियों में तुलसी को याद करता है।

शास्त्रकार ने कहा है कि...

तुलसी काननं चैव गृहेयस्याव तिष्ठते।
तद्गृहे तीर्थं भूतंहि न यान्ति यम किंकराः।।

''जिस घर में तुलसी का वन है वह घर तीर्थ के समान पवित्र है। उस घर में यमदूत नहीं आते।'' यहाँ यमदूतों का अर्थ, जहरीले, कीड़े, सर्प, बिच्छू आदि रोग कीटाणु बीमारियों से बचे है।

इसी तरह अन्यत्र कहा है...

तुलसी विपिनस्यापि समन्तात्पावनंस्थलम्।
कोशमांत्र भवत्येव गंगे यस्येव पायसः।।

''तुलसी वृक्ष के चारों ओर एक कोश अर्थात् दो मील तक की भूमि गंगाजल के समान पवित्र होती है।'' स्मरण रहे रोग कीटाणु नाश की गंगाजल में अपूर्व शक्ति है। उसमें कोई कीटाणु जीवित नहीं रह सकता और इसीलिए गंगाजल कभी सड़ता नहीं।

एक धर्म ग्रन्थ में लिखा है...

तुलसी गंधमादाय यत्र गच्छति मारुतः।
दशो दिशाः पुनव्याशु भूत ग्रामान् चतुर्विधान्।।

''तुलसी की गन्धयुक्त हवा जहाँ भी जाती है वहाँ की दशों दिशायें शीघ्र ही पवित्र हो जाती हैं और आकाश, पृथ्वी, वायु, जल आदि चारों तत्त्व उससे शुद्ध हो जाते हैं।''

हमारे यहाँ ही नहीं विदेशों में भी इसे पवित्र और लाभदायक माना है। ग्रीस में आधुनिक युग में भी एक

विशेष दिन तुलसी का उत्सव मनाया जाता है जिस ''सैन्ट बैसिल डे'' कहते हैं। इस दिन वहाँ की स्त्रियाँ तुलसी की शाखायें अपने गृह द्वार पर लाकर टाँगती हैं। उनका विश्वास होता है कि इससे उनकी मुसीबतें कष्ट दूर होंगे।

हमारे यहाँ तो तुलसी के साथ एक बहुत बड़ा धार्मिक क्रियाकाण्ड, तरह-तरह से उसकी पूजा-प्रदक्षिणा, तुलसी-दल सेवन का विधान है। अब वैज्ञानिक अनुसंधान और रासायनिक विश्लेषणों के आधार पर यह सिद्ध हो गया है कि तुलसी में कीटाणु नाशक तत्व प्रचुर मात्रा में हैं, जिससे रोग निवारण में यह काफी लाभप्रद सिद्ध होता है। तुलसी के पत्तों में एक प्रकार का कीटाणु-नाशक द्रव्य होता है जो हवा के संयोग से इधर-उधर उड़ता है। तुलसी का स्पर्श करने वाली वायु जहाँ भी जाती है वहाँ अपना रोग-नाशक एवं शोधक प्रभाव डालती है। मनुष्य शरीर में श्वास के द्वारा और स्पर्श से यह अनुकूल परिणाम पैदा करती है। शरीर से रोगों का निवारण होता है और स्फूर्ति, प्रफुल्लता पैदा होती है। तुलसी शरीर की टूट-फूट से होने वाले विषैले कोषों को शुद्ध करती है और शरीर से दूषित तत्वों को नष्ट करती है।

तुलसी में रोग-नाशक शक्ति प्रचुर मात्रा में होती है। चरक के अनुसार यह हिचकी, खाँसी, दमा, फेफड़ों की बीमारी तथा विष-निवारक होती है। भावमिश्र ने तुलसी को हृदय रोगों में लाभकारी, रक्त विकार को दूर करने वाली, अग्नि-दीपक, पाचन-क्रिया को स्वस्थ बनाने वाली बताया है।

सुश्रुत ने भी इसे रोग-नाशक, तेज-वर्धक, वात कफ-शोधक, छाती के रोगों में लाभदायक तथा आन्त्रक्रिया को स्वस्थ रखने वाली बताया है। पाश्चात्य चिकित्सा वैज्ञानिकों ने भी तुलसी को खाँसी ब्रौंकाइटिस, निमोनिया, फ्लू, क्षय आदि रोगों में लाभदायक बताया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि संसार की सभी चिकित्सा पद्धतियों में तुलसी के महत्व को स्वीकार किया गया है। आयुर्वेदिक, ऐलोपैथिक, यूनानी, होमियोपैथिक वाले सभी

अपने-अपने ढंग से रोग निवारण और स्वास्थ्य सुधार के लिए तुलसी का उपयोग करते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा की गई खोजों के आधार पर पता चला है कि तुलसी से प्राप्त होने वाला द्रव्य क्षय रोग के कीटाणुओं का नाशक होता है।

अधिकांश रोगों में तुलसी बहुत ही प्रभावशाली सिद्ध हुई है। दैनिक जीवन में सामान्य रूप से भी इसका सेवन करते रहना बहुत ही हितकर होता है। जुकाम, बुखार, मलेरिया, इन्फ्लुएंजा आदि में तुलसी का काढ़ा बना कर देने से लाभ होता है। मलेरिया के लिये तो यह अमोघ औषधि है। जहाँ तुलसी होती है वहाँ मच्छर नहीं रहते हैं। एक प्रयोग के अनुसार तुलसी का घोल पिचकारी से छिड़कने पर या तो मच्छर भाग जाते हैं या मर जाते हैं। तुलसी को शरीर पर मल कर सोया जाय तो मच्छर नहीं काटते।

आमाशय और दांतों पर तुलसी का अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इसके नियमित सेवन से पाचन संस्थान भली प्रकार काम करता है। मन्दाग्नि दूर होती है। पेट के कीड़े नष्ट हो जाते हैं। प्रातःकाल तुलसी के चार पाँच पत्ते चबा कर शीतल जल पीने से शरीर के कई दोष दूर होते हैं। बीज, तेज, मेधा, बल की वृद्धि होती है। आमाशय, जिगर, हृदय, छाती के रोगों में लाभ होता है। पुराण के अनुसार जो प्रातः, मध्याह्न और संध्या तीनों समय तुलसी

का सेवन करता है उसकी काया उसी तरह शुद्ध हो जाती है जैसे सैकड़ों चांद्रायण व्रतों से होती है। रक्त विकार फोड़े फुन्सियों चर्म रोगों में भी इसका लाभ दायक प्रभाव पड़ता है। इसके लिये तुलसी का सेवन और इसका लेप दोनों ही उपयोगी रहते हैं।

इस तरह तुलसी बीमारियों के निवारण के लिये अपने आप में एक परिपूर्ण औषधि है। प्रायः सभी रोगों में यह प्रभावकारी सिद्ध हुई है क्योंकि इसमें एक महत्वपूर्ण गुण है। शरीर से विषैले तत्त्वों का शमन करना और शरीर की कार्य प्रणाली को स्वस्थ, सशक्त बनाना। विभिन्न रोग शरीर में विजातीय पदार्थ इकट्ठे हो जाने या रोग कीटाणुओं के बढ़ जाने अथवा शरीर के अक्षम हो जाने से ही पैदा होते हैं। तुलसी इन तीनों का निवारण करती है। यह शरीर को शुद्ध करती है, कीटाणुओं को नष्ट करती है और शरीर को शक्तिशाली समर्थ बनाती है।

शरीर शोधन के साथ-साथ तुलसी मानसिक शुद्धि के लिये भी काफी प्रभावशाली है। सर्वप्रथम शरीर की अशुद्धि ही मन ही अशुद्धि का कारण होती है। तुलसी इसे दूर करती है और स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन काम करता है। तुलसी सूक्ष्म रूप से शान्ति, सात्विकता, निर्मलता, शीतलता के गुणों से युक्त होती है। आप कुछ समय के लिये तुलसी के उपवन में बैठ जाए आपको तत्काल ही शान्ति मिलेगी। इसीलिये आध्यात्मिक साधनाओं से तुलसी का अनन्य संबंध है। तुलसी के सेवन, उसकी सेवा पूजा, सान्निध्य रखने से सात्विकता की वृद्धि होती है और आत्मिक गुण बढ़ते हैं। जिस तरह शरीरगत दोषों को तुलसी दूरी करती है उसी तरह मानसिक दोषों को भी दूरी कर, सद्गुणों का विकास करने में लाभप्रद होती है। अक्सर तुलसी की माला, कण्ठी आदि शरीर में धारण करने का विधान है हमारे यहाँ। यह इसी ठोस सिद्धांत पर आधारित है। हमारे यहाँ ही नहीं विदेशों में भी इसका आध्यात्मिक कार्यों में उपयोग होता है। तुलसी की लकड़ी को किसी भी रूप में शरीर में धारण करने पर वह शाँतिदायक सिद्ध होती है। मंदिरों में तुलसीदल युक्त चरणोदक दिया जाता है इससे क्रोध और अहंकार, उत्तेजनाएँ शान्त होते हैं। नम्रता पैदा होती है। तुलसी का स्पर्श कर आने वाली वायु से पवित्र भावनायें जाग्रत होती हैं। सूक्ष्म प्रेरणाओं को ग्रहण करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

हमारे यहाँ दैनिक जीवन में तुलसी का संपर्क बनाये रखने के लिये ही पूर्वज-मनीषियों ने इसे धार्मिक-मान्यता दी थी। घरों में तुलसी के विरवा लगाना, जल चढ़ाना, उनका पूजन करना, परिक्रमा करना आदि गृहस्थ के लिये आवश्यक धर्म कर्तव्य के रूप में माना गया है। इन सब के पीछे ऋषियों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण और उनके जीवन का लंबा अनुभव ही था।

तुलसी के पौधों के पास सर्प भी नहीं आते, रोग कीटाणु वहाँ ठहर भी नहीं सकते। इसकी गन्ध से वे दूर रहते हैं या मर जाते हैं। अनेकों रोगों में यह रामबाण औषधि है। तुलसी वातावरण को शुद्ध बनाती है। आध्यात्मिक गुणों की वृद्धि और विकास के लिए तुलसी बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी है। ये पवित्र तुलसी तो श्रीहरि की अर्धांगिनी है, धार्मिक महत्व भी इतना है।

श्रीहरि और तुलसी का अखंड संबंध

श्रीहरि विष्णु और तुलसी का संबंध अखंड है। तुलसीपत्र के बिना श्रीहरि भोग-प्रसाद, भेंट-सोगाद किसी भी चीज का स्वीकार नहीं करते। शास्त्रों की रीति के अनुसार हमारे पूजा स्थान में सुबह कि पूजा में पुष्प व तुलसी भगवान को अर्पित किया जाता है, शाम को ये सब पुष्प वापस लेकर जल में बहा देते हैं। लेकिन श्रीहरि को अर्पण किया हुआ तुलसी कभी भी अलग नहीं करने का विधान है। भारतवर्ष के सभी श्रीहरि मंदिर, श्रीराम, श्रीकृष्ण मंदिर में तुलसी से श्रीविष्णुसहस्रनाम से तुलसी अर्चना, पूजा होती है। इस तरह श्रीहरि और तुलसी का संबंध अखंड हैं, इसलिए तो श्रीहरि ने तुलसी को ''विष्णुप्रिया'' नाम दिया है।

ऐसी गुणसागर तुलसी को प्रणाम!

ॐ नमो नारायणाय!

आइये, संस्कृत सीखेंगे..!!

आयोजक - महामहोपाध्याय समुद्राल लक्ष्मणय्या, श्री किरणभट

हिन्दी में निर्वहण - डॉ.सी.आदिलक्ष्मी
मोबाइल - ९९४९८७२१४९

पाठ - ३

ड् + ग = ड्ग
ड् + ज = ड्ज
ड् + ड = ड्ड
ड् + ढ = ड्ढ
ड् + ब = ड्ब
ड् + भ = ड्भ
ड् + म = ड्म
ड् + य = ड्य
ड् + र = ड्र
ड् + व = ड्व
ढ् + ढ = ढ्ढ
ढ् + म = ढ्म
ढ् + य = ढ्य
ढ् + र = ढ्र
ढ् + व = ढ्व
ण् + ट = ण्ट

ण् + ठ = ण्ठ
ण् + ड = ण्ड
ण् + ढ = ण्ढ
ण् + ण = ण्ण
ण् + म = ण्म
ण् + य = ण्य
ण् + व = ण्व
त् + क = त्क
त् + ख = त्ख
त् + त = त्त
त् + थ = त्थ
त् + न = त्न
त् + प = त्प
त् + फ = त्फ
त् + म = त्म
त् + य = त्य

त् + र = त्र
त् + व = त्व
त् + स = त्स
थ् + न = थ्न
थ् + य = थ्य
थ् + र = थ्र
थ् + व = थ्व
द् + ग = द्ग
द् + घ = द्घ
द् + द = द्द
द् + ध = द्ध
द् + भ = द्भ
द् + म = द्म
द् + य = द्य
द् + र = द्र
द् + व = द्व

जूलाई महीने का राशिफल

- डॉ.केशव मिश्र
मोबाइल - ९९८९३७६६२५

मेषराशि - शरीर स्वस्थ रहेगा। अन्न-धन-वस्त्रादि की प्राप्ति, इष्टमित्रों तथा स्वजनों के सहयोग से अभिष्टकार्य की सिद्धि होगी। प्रतियोगी क्षेत्र में सफलता, नौकरी प्राप्ति, शिक्षा में प्रगति होगी।

वृषभराशि - आवश्यक कार्यों में धनव्यय होता रहेगा। नित्यकर्म में बाधा उत्पन्न होंगे। नौकरी से असंतुष्टि तथा स्थान परिवर्तन का योग। धर्माचरण करें, लाभदायक रहेगा।

मिथुनराशि - कठिन परिश्रम से शिक्षा में सफलता, धनागम, पद-प्रतिष्ठा की वृद्धि, संतान सुख, पत्नी सुख, स्थान परिवर्तन योग शुभफलदायक रहेगा।

कर्कराशि - नौकरी-व्यवसाय की स्थिति सामान्य रहेगी। राजकीय उलझन, तनाव, वाद-विवाद न फंसे। छात्रों के लिए सुअवसर, संतान चिंता, पारिवारिक चिंता, आर्थिक चिंता बनी रहेगी।

सिंहराशि - राजकीय-सामाजिक सम्मान लाभ, गृह-भूमि-वाहन, कृषि कार्यों में प्रगति होगी। स्वास्थ्य उत्तम रहेगा, रूके हुए कामों में प्रगति, शुभ कार्य विचारों का उदय। पारिवारिक दायित्व निर्वहन में कठिनाई।

कन्याराशि - अर्थ लाभ, पारिवारिक-घरेलू-सुखों की वृद्धि, सगे संबन्धियों का समागम, भौतिक सुख, दाम्पत्य सुख प्राप्त होंगे। शारीरिक कष्ट, मानसिक चिंता कभी-कभी बनी रहेगी।

तुलाराशि - धार्मिक कार्य-मांगलिक कार्य संपादन होंगे, सुखी दाम्पत्य जीवन रहेगा। नई नौकरी और कई सुअवसर प्राप्त होंगे। शत्रुओं पर ध्यान दें। विदेश यात्रा का योग बन रहा है।

वृश्चिकराशि - वक्री गुरु एवं राश्येश के पंचमस्य होने से स्वास्थ्य संबंधी उलझने बढ़ेगी। पारिवारिक सहयोग प्राप्त होंगे। व्यापारिक कार्य सामान्य रहेगा। अधिक परिश्रम से लाभ।

धनुराशि - अनेक लाभ के अवसर प्राप्त होंगे। गृहस्थ जीवन सुखी, कार्यों में प्रगति, सामाजिक विकास। छात्रों को प्रतियोगी क्षेत्र में सफलता। सामाजिक कार्यों में विशेष अभिवृद्धि।

मकरराशि - कार्यों में अवरोध। शारीरिक पीड़ा, आलस्य एवं उदासीनता से मन खिन्न रहेगा। घर में सुख-शांति की कमी रहेगी। अनावश्यक धन व्यय होगा।

कुम्भराशि - निरर्थक तनाव, वाद-विवाद, पारिवारिक चिंता, स्वास्थ्य चिंता। नौकरी से लाभ। व्यापारिक कार्यों में सफलता। नई-नई रोजगार के सुअवसर।

मीनराशि - धार्मिक कार्यों में अभिरुचि, स्वास्थ्य चिंता, मनोविकार, अपनों से कष्ट-तनाव। विशिष्ट जनों का सहयोग प्राप्त होंगे। रोजी-रोजगार में अनुकूलता।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति

सप्तगिरि

(आध्यात्मिक मासिक पत्रिका)

चंदा भरने का पत्र

१. नाम : ....
(अलग-अलग अक्षरों में स्पष्ट लिखें) ....
....
पिनकोड ....
मोबाइल नं ....

२. वांछित भाषा : ☐ हिन्दी ☐ तमिल ☐ कन्नड ☐ तेलुगु ☐ अंग्रेजी ☐ संस्कृत

३. वार्षिक / जीवन चंदा :

४. चंदा का पुनरुद्धरण :

(अ) चंदा की संख्या :

(आ) भाषा :

५. शुल्क :

६. शुल्क का विवरण :

नकद (एम.आर.टि. नं) दिनांक :

धनादेश (कूपन नं) : दिनांक :

मांगड्राफ्ट संख्या : दिनांक :

प्रांत :

दिनांकः चंदा भरनेवाले का हस्ताक्षर

- वार्षिक चंदा : रु.६०.००, जीवन चंदा : रु.५००-००
- नूतन चंदादार या चंदा का पुनरुद्धार करनेवाले इस पत्र का उपयोग करें।
- इस कूपन को काटकर, पूरे विवरण के साथ इस पते पर भेजें–
- संस्कृत में जीवन चंदा नहीं है, वार्षिक चंदा रु.६०-०० मात्र है।

प्रधान संपादक, सप्तगिरि कार्यालय, के.टी.रोड,
तिरुपति-५१७ ५०७. (आं.प्र)

नूतन फोन नंबरों की सूचना

चंदादारों और एजेंटों को सूचित किया जाता है कि हमारे कार्यालय का दूरभाष नंबर बदल चुका है और आप नीचे दिये गये नंबरों से संपर्क करें–

कॉल सेंटर नंबर
0877 - 2233333

चंदा भरने की पूछताछ
0877 - 2277777

अर्जित सेवाओं और आवास के अग्रिम आरक्षण के लिए कृपया इस नंबर से संपर्क करें–

STD Code: 0877

दूरभाष :

कॉल सेंटर नंबर :
2233333, 2277777.

Edited and Published on behalf of T.T.Devasthanams by **Prof.K.Rajagopalan,** Ph.D., Chief Editor, T.T.D. and Printed at T.T.D. Press by **Sri P.Ramaraju,** M.A., Special Officer (Press & Publications), T.T.D. Press, Tirupati-517 507.

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

इधर गरुड़ पर तुम चढ़ने पर
पट-पट दिशाएँ झट-झट फटे

उड़े गरुड़ को 'धा' कह करके
पटुतर वेग से चलने पर
निगमांत तथा निगम-संघ सब
गगन जग सभी गड़-गड़ काँपे

छटपट गरुड़ का चालन करते
झटझट तुम क्रोधित होने पर
सम बन अखिल सब जर्जरित हो
एकसाथ वे चारों-तरफ फिरे

सरभस तेरे स्वर्ण गरुड़ पर
कटु बन तेरे चढ़ जाने पर
दंग रही राक्षस-समिति चमत्कार
डूबते समुंदर वेंकटरमणा ॥

- अन्नमय्या

(संपुट १ - संकीर्त्तन १२)

गरुडपंचमी

२५-०७-२०२०

SAPTHAGIRI (HINDI) ILLUSTRATED MONTHLY Published by Tirumala Tirupati Devasthanams
printing on 30-07-2020. Regd. with the Registrar of Newspapers under "RNI" No.10742, Postal Regd.No.TRP/11 - 2018-2020
Licensed to post without prepayment No.PMGK/RNP/WPP-04/2018-2020

तिरुमल श्री बालाजी का पवित्रोत्सव
३०-०७-२०२० से ०१-०८-२०२० तक